(द्वितीय पुष्प)

●

संकलन कर्त्ता—निर्मला

●

श्री नारायण आश्रम
शिवकुटी, प्रयाग ।

प्रकाशक :

शोभा कान्ति भार्गव

३१ अ, कचहरी रोड, प्रयाग।

मुद्रक :

शारदा प्रसाद जायसवाल

देश सेवा प्रेस, प्रयाग।

वीतराग तपोमूर्ति तेजस्वी श्री नारायण महाप्रभु

॥ श्री गुरुवेनमः ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समो ऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्य प्रतिम प्रभाव ।

नम्र निवेदन

श्री गुरुवेनमः

श्री श्री १०८ श्री शुकदेव भगवान श्री नारायण महाप्रभु के द्वारा "अध्यात्म केन्द्र श्री नारायण आश्रम" में दिये हुए प्रवचन का द्वितीय वर्ष का प्रकाशन भक्तों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। यह आत्म योग का द्वितीय पुष्प है। आशा की जाती है कि यह प्रथम पुष्प से भी अधिक उपयोगी जनता को आत्म कल्याण के लिए होगी। विशेष तौर से इस वर्ष के प्रवचन में प्रभु ने भक्तों को यही सिखाने तथा समझाने का प्रयास किया है कि कौन से ऐसे साधनों को वह जीवन में प्रयोग करें जिससे कि वह अपने स्वरूप कर साक्षात्कार सहजता से कर सके। चारित्र्य शुद्धि, व्यवहारिक शुद्धि तथा आत्म शुद्धि आदि तत्व ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है। नाना प्रकार के सद्कर्म तथा साधन के द्वारा ही जिज्ञासुओं का अन्तःकरण स्फटिक के सदृश स्वच्छ तथा निर्मल बन कर तत्व ज्ञान को समझने के योग्य बनता है। उन्हीं से रहित निरपेक्ष अन्तःकरण में ही प्रभु का वास हो सकता है एक जिज्ञासु को ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है। अपने निज स्वरूप का विस्मरण हो जाना ही बन्धन का कारण है एवं आत्म दृष्टि हो जाना ही मुक्ती का।

अतः श्री सद्गुरु के चरण कमलों में एक निष्ठा से लगे रहने पर अलभ्य भी लभ्य हो जाता है।

यह शरीर श्री सद्गुरु के चरण कमलों का अबोध मधुकर है। जिसे न भाषा का ही तथा न शैली का यथार्थ ज्ञान है किन्तु फिर भी प्रभु के मुखारबिन्द से बिखरे हुए मणियों को गूथने का प्रयास किया है जिससे सभी समान लाभ उठा सकें।

चैत्र शुक्ल अष्टमी, २०२१ : —निर्मल

अमृत कण

१—तत्व ज्ञान, तत्व दर्शी ज्ञानी पुरुष के सेवा भक्ती से ही प्राप्त हो सकता है।

× × ×

२— कार्य अधिक है, समय कम है, जीवन अल्प है शीघ्र ही जागो नहीं तो हाथ मलना पड़ेगा।

× × ×

३—सभी वस्तुएँ पुनः मिल सकती हैं किन्तु यह समय पुनः कभी लौटकर नहीं मिलेगा।

× × ×

४—किसी भी दुर्बल तथा मोह-माया से आसक्त पुरुष से घृणा न करो बल्कि आत्मा भाव रखकर स्नेह पूर्ण व्यवहार के द्वारा उसकी त्रुटि दूर करो।

× × ×

५—यदि सुख चाहते हो तो सद्‌गुरु की शरण ग्रहण करो।

६—सोने की परीक्षा तपाने तथा छेदने से की जाती है, मानव की परीक्षा उसके शील, गुण, कर्म व्यवहार तथा ज्ञान द्वारा की जाती है।

× × ×

७—अपने को सबसे नीचा गिरा हुआ मत सोचो बल्कि ज्ञान बुद्धि शक्ती का विकास करो। केवल हम खराब, हम खराब कहने से पतन होगा। उस खराबी को सद्गुरु, सत्संग सत्शास्त्र अध्ययन तथा सद्कर्म के द्वारा दूर करने का प्रयास करो।

× × ×

८—विश्व में कोई भी वस्तु असम्भव नहीं, हमारे पुरुषार्थ की कमी है। सूर्य की प्रत्येक किरण में, हीरे के प्रत्येक कण में हमारी ही ज्योति की ज्योति है अतः तत्व ज्ञान के द्वारा अपनी ज्योति को प्रकट करो।

———

सद्गुरु महिमा

हो रही वाणी मूक आज मेरी।

अवलोक सद्गुरु महिमा अगाध तेरी ।।

अगम अलौकिक ज्ञान दिव्य गुरु का।

वाणी से छलकता अभीय अनुराग बल का ।।

नहीं रही पा मैं प्रभु थाह तेरी।

अवलोक सद्गुरु महिमा अगाध तेरी ।।

अनुपम ज्ञान वैराग्य दीप्त उर में।

दृग में दिव्यता मधुरता भरे स्वरों में ।।

सरलता सरस रही भक्तों में प्रभु तेरी।

अवलोक सद्गुरु महिमा अगाध तेरी ।।

अगम्य आत्म ज्ञान मम गुरु का।

साक्षात् होता जिन रूप धन का ।।

नारायण गुरु बिनु शान्ती नहीं मेरी।

अवलोक सद्गुरु महिमा अगाध तेरी ।।

× × ×

युगों का मिट गया अज्ञान अंधकार ।

पहन लिया अमर गुरु नाम हार ॥

जगमग हो गया भक्त जीवन समृद्धि ।

हो रही वृद्धि सुख, शान्ति तपद्धि सिद्धि ॥

मिटा निर्मल मन का आज तम जाल ।

पा गुरु ज्ञान दान कहूँ का हाल ॥

— —

आत्म योग

भाग २

॥ श्री गुरवेनमः ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवेनमः ॥

एक मनुष्य था वह समुद्र को देखने चला किन्तु समुद्र का ओर छोर न देख कर उसने सोचा कि इसके अन्दर स्नान करके देखू इसकी क्या गहराई है ? उसके साथ उसका मित्र था। दोनों ने समुद्र में प्रवेश किया। समुद्र की तरंग को उठती देख कर उसने कहा इस प्रकार इसमें कहीं बाढ़ आये तो विश्व कहीं डूब न जाये। मित्र ने कहा नहीं भाई जैसे इसकी ऊँची तरंग उठती है वैसे ही बैठ भी जाती है इस पर वह समझा इसी प्रकार बहुत से लोग कहते हैं की हम ज्ञान क्यों नहीं जल्दी समझ पाते ? भगवान गुरुदेव उनको इसी प्रकार उपर्युक्त कथा के सदृश आश्वासन देते और समझाते हैं। यदि कोई भी जिज्ञासु आए और खड़े होकर केवल समक्ष रक्खी हुई वस्तुओं को देखे अथवा जो भी दृष्टि से देखे, तो क्या इतने से ही वह तत्व ज्ञान को समझ सकेंगे ? अथवा वह आकर कहें मुझे तत्व ज्ञान आप दीजिए क्योंकि आप ब्रह्म स्वरूप हैं तो क्या वह ऐसे इतना कहने से तत्व ज्ञान पा लेंगे ?

वह शीघ्र उस वस्तु को नहीं समझ सकता है समझते समझते स्वतः अनुभव से समझेगा—आपने कहा एक ही आत्मा है क्योंकि आपने गुरुजनों से सुना है आपने न उसका रूप देखा है न रंग। जैसे किसी ने सुना घृत नामक पदार्थ दूध का एक रूप होता है। वह दूध वाली के पास जाये और कहे मुझे अभी

घृत दीजिए। उसने कहा कि आपको घृत मिलने के लिए कम से कम एक दिन रुकना पड़ेगा क्योंकि पहले दूध को खूब उबाला जायगा तब मलाई जमाई जायगी तत्पश्चात् उसको मथा जायगा तब कहीं जाकर घृत प्राप्त हो सकेगा किन्तु उनको इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद शुद्ध घृत दूध से प्राप्त करने में संतोष नहीं था। अतः वह उद्वेगी-ग्राहक वहाँ से बिना घृत प्राप्त किये हुए ही भाग खड़ा हुआ ऐसी स्थिति में सिवाय असफलता के और कुछ हाथ लगने का नहीं।

धीवर या मल्लाह के जाल में फँसने वाली मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं कुछ तो जैसी की तैसी पड़ी रहती हैं, वहाँ से निकलने तक का प्रयत्न नहीं करतीं और तो क्या वह यह भी नहीं जानतीं कि उन पर कोई संकट आ पड़ा है। कुछ मछलियाँ भागने का प्रयत्न करती हैं पर उन्हें निकलने का मार्ग नहीं मिलता और एकाध बहादुर मछली ऐसी होती हैं, जो जाल को काट कर निकल भागती हैं। वैसे ही इस संसार में तीन प्रकार के जीव दिखाई देते हैं—बद्ध मुमुक्षु और मुक्त। कोई दूध का केवल नाम ही सुने होता है, कोई दूध को देखे होता है' और कोई दूध को चखे होता है, वैसे ही 'कोई तो ईश्वर है' ऐसा सुने होता है, कोई ईश्वर का दर्शन किये होता है और कोई ईश्वर से बात किये होता है। वह लोग क्रमशः अज्ञानी ज्ञानी और विज्ञानी कहाते हैं।

आत्मा क्या है ? इसको समझने से पूर्व हमें समझना होगा कि यह पिंड या शरीर क्या है ? यह वेदान्त विचार से संक्षेप में निम्नलिखित पाँच कोशों का समूह है :—

(१) <u>अन्नमय कोश</u>—अन्न से उत्पन्न हुआ यह देह ही अन्नमय कोश है जो अन्न से ही जीता है और उसके बिना नष्ट हो

जाता है। यह त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, अस्थि और मल आदि का समूह स्वयं नित्य शुद्ध आत्मा नहीं हो सकता यथा—

देहोऽयमन्नमवनोऽन्नमयस्तु कोश-
श्चान्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीनः।
त्वक्चर्म मांस रुधिरास्थि पुरीषराशि-
र्नायं स्वयं भवितु मर्हति नित्य शुद्धः॥

(२) प्राणमय कोश—पाँच कर्मेन्द्रियों से युक्त यह प्राण ही प्राणमय कोश कहलाता है, जिससे युक्त यह अन्नमय कोश अन्न से तृप्त होकर समस्त कर्मों में प्रवृत्त होता है। प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं है क्योंकि यह वायु का विकार है। यथा—

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽयं।
प्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोशः॥
येनात्मवानन्नमयोन्नपूर्णः।
प्रवर्ततेऽसौ सकल क्रियासु॥
नैवात्पापि प्राणमयोवायुविकारो......

(३) मनोमय कोश—ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ही "मैं", "मेरा" आदि विकल्पों का हेतु मनोमय कोश है जो नामादि भेद-कल्पनाओं से जाना जाता है और बलवान है तथा पूर्व कोशों को व्याप्त करके स्थित है। यथा—

ज्ञानेन्द्रमणि च मनश्च मनोमयः
स्यात्कोशों ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः

संज्ञादि भेद कलनाकलितो
बलीयांस्तत्पूर्व कोशमभिपूर्य विजृम्भते यः ॥

(४) विज्ञानमय कोश—ज्ञानेन्द्रियों के साथ वृत्तिमुक्त बुद्धि ही कर्तापन के स्वभाव वाला विज्ञानमय कोश है जो पुरुष के (जन्म-मरणरूप) संसार का कारण है। यथा—

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृ लक्षणः।
विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम् ॥

(५) आनन्दमय कोश—आनन्द स्वरूप आत्मा के प्रतिबिम्ब से चुम्बित तथा तमोगुण से प्रकट हुई वृत्ति आनन्दमय कोश है। यह आनन्दमय कोश भी परमात्मा नहीं है, क्योंकि यह उपाधियुक्ति है, प्रकृति का विकार है, शुभ कर्मों का कार्य है और प्रकृति के विकारों का समूह (स्थूल शरीर) के आश्रित है। यथा—

आनन्द प्रतिबिम्ब चुम्वित तनुर्वृत्ति स्तमोजृम्भिताः—
नैवामयानन्दमयः परात्मा, सोपाधिकत्वात्प्रकृतेर्विकारात्
कार्यत्वहेतोः सुकृत क्रियाया, विकार सङ्घात समाहितत्वात्

इस प्रकार जो आत्मा स्वयं प्रकाश अन्न मयादि पाँच कोशों से पृथक तथा जागृत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर भी निर्विकार, निर्मल और नित्यानन्द स्वरूप है उसे ही अपना वास्तविक आत्मा समझना चाहिए। यह श्रुति (वेद) के अनुकूल युक्तियों से पाँचों कोशों का निषेध करते हुए प्राप्त होता है।

श्रुति या वेद के अनुकूल युक्तियों को बताने के लिए ही पुराणादि का निर्माण हुआ है जिसके आधार पर निरंतर संत-सेवा और सत्संग के द्वारा सरलता पूर्वक इष्ट सिद्धि होकर सफलता प्राप्त होती है अतः सद्‌गुरु को पाकर मुक्त हो सकते हैं यह कोई हाथ पर जमने वाली दही जैसी बात नहीं।

वेद उदधि बिन गुरु लखै, लागे लौन समान।
बादर गुरुमुख द्वार है, अमृत से अधिकान॥

पशु ओर मानव में वस्तुएँ सब एक ही होती हैं केवल ज्ञान का अन्तर है। किन्तु पशु में भी उनके तक का जो ज्ञान है उसे वे जानते हैं। हर एक चीज में तो गुरु (तरीका या नियम) (Short form, formula) लगता है। गुरु तो है ही। किन्तु जो कुछ प्रश्न या समस्या रहे उसे सद्‌गुरु द्वारा समझना चाहिए एक प्रश्न या समस्या का सुझाव एक ही नहीं होता। जैसे किसी वस्तु का नाम अनेक भाषा में फर्क-फर्क मिलेगा। सद्‌गुरु के वचन के ऊपर सदा विश्वास करने से सब कुछ हो सकता है किन्तु भाव या अर्थ समझना चाहिये।

आप लोगों में एक ही आत्मा है लिखा है पर क्या अनुभव से लिखा है ? या पुस्तक के द्वारा ही।

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी विलायत जाने के लिए जहाज पर बैठने लगे, जहाज वालों ने उन्हें रोक दिया। विवेकानन्द जी आसन जमा कर बैठ गये। उन्होंने कहा देखें जहाज कैसे चलता है ? जहाज चल ही नहीं सका देखने पर पता लगा कि साधू आसन लगाए बैठा है यह सीमित आत्मा की बात है। जैसे जल है उसकी लहर और भँवर—अलग-अलग नाम धरे

गये हैं। किन्तु रूप नाम का अन्तर है वस्तु एक ही। जैसे सोने के लाख गहने बनने पर भी सोना ही रहता है।

रूप के अनुकूल ही नाम व गुण हो जाता है। इसीलिए यह पृथक-पृथक दृष्टिगोचर होता है। अनेक घड़े हैं एक सूर्य का बिम्ब सब घड़ों पर पड़ता है किन्तु, सूर्य अनेक नहीं है एक ही है। उसका प्रतिबिम्ब सभी बर्तनों में उतने रूप होकर दिखाई पड़ता है। घड़े से जल हटा दें तो सूर्य एक का एक ही है।

सूर्य और सूर्य की किरणें अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु देखने में अलग-अलग मालूम पड़ता है परन्तु वास्तव में एक ही सूर्य की अनेक किरणें दिखाई पड़ती हैं।

केवल इतना ही ज्ञान अधिक न समझो इससे भी आगे बुद्धि विशाल करके देखो। राम नाम के अन्दर कौन सी शक्ति नहीं है? वही राम नाम भज कर आप कुछ नहीं कर पाते, वही राम नाम जप कर मीरा-तुलसी ने सब कुछ कर लिया। इस जपने में अवश्य कुछ भिन्नता है।

चैतन्य महाप्रभु ने भी केवल हरे राम हरे कृष्ण भाव पूर्ण हृदय से जपा और बाद में फिर ईश्वर स्वरूप हो गये। हाँ ठीक ही है यही राम जपने वाले भी जब तक उस सत्य तत्व को नहीं जानेंगे तब तक उस स्वरूप को नहीं पायेंगे।

अपनी बुद्धि से भी कुछ सत्य असत्य का विचार तथा वास्तविकता को समझना चाहिये। मृग की नाभि में ही कस्तूरी रहती है और वह उसकी सुगन्ध पाकर उसको बन-बन में ढूँढ़ता फिरता है तथा दुःख पाता है। ठीक इसी प्रकार हमारी दशा है। हम स्वयं भगवान और ईश्वर स्वरूप हैं किन्तु उसे न जानने के कारण दर-दर फिरते हैं।

कस्तूरी कुडंलि बसे, मृग ढूँढ़े बन माहिं।
ऐंसे घट घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं ॥

आप अपनी बुद्धि रूपी कुदाली से शास्त्र रूपी पहाड़ को खोदियेगा तो देखियेगा कि क्या-क्या हीरे, मोती, पुखराज आदि अनमोल रत्न उसमें भरे हैं ? भगवान ने समुद्र मथा था तो जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन्हें निकाल कर मंथन बन्द कर दिया। शास्त्र रूपी समुद्र से एक ही तत्व नहीं निकलता इसके लिए जानने वाला होना चाहिए। यदि पुरुषार्थ करे यानी पूर्ण निष्ठा और तन्मयता से राम-राम भजे तो और भी अधिक मीरा आदि से भी आगे बढ़ सकते हैं।

सारांश—हमारे राम नाम भक्ति के अन्दर इतनी ही शक्ति नहीं है कि जैसे बाग-बगीचे, साड़ी-गहने, परिवार आदि जिसको त्याग कर यहाँ अकेले आये यह पुनः मिले क्या राम-राम भजने का यही फल है ? कुछ नहीं तो उसके फल स्वरूप अपनी आत्मा का तो साक्षात्कार हो ही जाना चाहिए। जब उसका अनुभव हो तो समझो भगवान के भजन का एफ हिस्सा फल मिला है। अनेक लोगों के यहाँ आने से मेरा कोई अभिप्राय नहीं है बल्कि उनमें आत्म शक्ति का भास हो चाहे संख्या कम ही हो।

शुद्ध निर्मल जल में जो वस्तु डालो स्पष्ट दिखाई पड़ती है ठीक वैसे ही जब हमारा हृदय निर्मल शुद्ध होगा तो हम भी वैसे ही परम शुद्ध निर्मल हृदय को खींच लेंगे आत्मा में ही परमात्मा को पाकर मुक्त हो सकेंगे।

उल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीता राम।

॥ श्री गुरुवेनमः ॥

भक्तन के हितकारी आपको लाखो प्रणाम
संतन के प्रतिपाला आपको लाखो प्रणाम
जै जै सतगुरु ब्रह्म लखैया आपको लाखो प्रणाम

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वम् मम देव देव :

आप ही सोच लीजिये विश्व किसके लिये बना है ? जैसे आश्रम किसके लिये बना है ? धर्मात्मा भी उसमें निवास करते हैं। यह धर्म मार्ग ही दिखलाता है, धर्म की यह शिक्षा देता है तात्पर्य यह निकला कि सीमित क्षेत्र में जो आश्रम है वह धर्मात्मा के लिये तथा धर्म के लिये बना है। इसी प्रकार यह विश्व धर्मात्मा के लिये बना है। उसी भगवान की सेवा के लिये पर अनाधिकारी और अभक्त गण अपने आप इस पर राज्य जमा लेते हैं। यहाँ तात्पर्य यह है कि सदाचार और दुराचार (धर्म-अधर्म) के संघर्ष से हैं। जैसे माँ के कई पुत्र हैं सब पर बराबर कृपा है जो सुन्दर बुद्धिमान आज्ञाकारी हैं वे भी रहेंगे जो कुरुष, माता-पिता की आज्ञा न मानने वाले हैं, वे भी उसी में रहेंगे। जो पुरुषार्थी हैं, माता-पिता की सेवा करने वाले हैं उनको अवश्य ही अपेक्षाकृत अधिक प्यार मिलता है। किन्तु जब घर की सम्पत्ति का बंटवारा होता है तो कुपुत्र सुपुत्र दोनों ही बराबर के भागी होते हैं। ऐसे ही संसार का कायदा है जो उस परमात्मा से भेंट कराने वाले हैं, सद् मार्ग पर चलाने वाले

उनसे मोहांध और मूढ़ लोग अकारण ही शत्रुता करते रहते हैं और परिणाम दुःखमय होता है। धर्मात्मा जन संतोष पूर्वक इससे अलग हो जाते हैं। क्योंकि वे जानते हैं—

संतोषादनुत्तम सुख लाभः

अर्थात् संतोष से बढ़कर सुख और लाभ नहीं है।

ऐसे ही निज स्वरूप को प्राप्तकर लेने वाले का ही राज्य संसार में स्थिरता पूर्वक चलता है, अर्थात् वह मर कर भी अमर है।

गुणातीत हो रहत विकारा,
सब भूतन में वास तुम्हारा।
सब में रहते हुये निराला,
तभी कहाते दीन दयाला॥

सत, रज, तम, तीनों गुणों से अतीत वे सब पर अपना राज्य जमा लेते हैं।

न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥

अर्थात्—'तथा ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे, किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुआ और सब कर्मों को अच्छी प्रकार करता हुआ, उनसे भी वैसे ही करावे।"

स्वामी रामकृष्ण परम हंस ने कहा है—स्वयं साधक बने बिना किसी साधक के जीवन का इतिहास समझना कठिन है

हम सब कुछ करते हुये भी अलग हैं। अच्छा करने वाले को अच्छा फल देते हैं बुरा करने वाले को बुरा फल देते हैं। सब कुछ करते हुये भी अकर्त्ता हैं जैसे यहीं हमीं को देख लीजिये आप सबके बीच में होते हुये भी आपसे अलग हैं। यों तो प्रभु प्रेम के बन्धन में है। और किसी भी बंधन में नहीं है जैसे सांप में विष है किन्तु दोनों हैं अलग-अलग ही क्योंकि सांप को विष नहीं मारता, जिसको वह काटता है वही मरता है।

क्षमाशील होंगे तो पूर्ण क्षमा शील ही हो जायेंगे। यदि वध ही करना पड़ेगा तो विराट स्वरूप धर लेंगे। जैसे जब प्रभु को समुद्र पार करना था तो पहिले उन्होंने समुद्र की वन्दना की जब समुद्र नहीं आया तो धनुष बाँण खींचकर उसको सुखा डालने को तैयार हो गये। अन्त में समुद्र आया और भगवान की सेवा की, और कहा यदि मैं रावण की नगरी के समीप न होता तो मेरी आज मर्यादा का भंग तो न होता—

वसि कुसङ्ग चाहत कुशल यह रहीम अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बसा पड़ोस।

परमात्मा का कर्म भुने बीज के सदृश है यानी आत्मदर्शी पुरुष स्वतः ही धर्म के अवतार होते हैं। महापुरुषों के जीवन चरित्र से स्पष्ट होता है कि वे स्वतः ही बाल्यावस्था से सुसंस्कार रूप त्यागी एवं निर्मोही होकर आये हैं। किन्तु समय-समय पर आवश्यकतानुसार गुणों से यानी सत, रज, तम से उनको भी काम लेना पड़ता है।

ज्ञान, विवेक वैराग्य और विचार यह महापुरुषों के चार आभूषण हैं। महापुरुष क्रोध करते ही नहीं यदि करते भी हैं तो तेरे भले के लिये। मानों हम तुझको भगवान् के चरणों में लगा

कर छोड़ेंगे; जोगी बनाकर छोड़ेंगे किन्तु यदि संसारी क्रोध करते हैं तो अनिष्ट कर देते हैं। महापुरुषों का क्रोध तो अनिष्ट को छुड़ा देता है।

एक साँप ने शिव जी की तपस्या की। शिव जी ने प्रसन्न होकर बरदान दिया और कहा, अमुक वृक्ष के नीचे बैठकर सुख से भजन करो। सर्प ने भी काम-क्रोध त्याग दिया। उसकी ऐसी सात्विक प्रवृत्ति देखकर लोग उसे कष्ट देने लगे फिर उसने शङ्कर जी से जाकर निवेदन किया। शंकर जी ने कहा, तुम क्रोध न करो। किन्तु जब वह लोग आयें तो केवल फुफकार देना कोई नुकसान न पहुँचाना।

दूसरे दिन सर्प ने वैसे ही किया और वे लोग हट गये। इसलिये सदैव 'विवेक' से काम लेकर जीवन बिताने में ही सुख और सफलता मिल सकती है। इस विवेक की प्राप्ति के लिये अपने निस्वार्थी और सच्चे हितैषियों को खोजकर सत्संग लाभ करना ही एक मार्ग है।

श्री सत्गुरु के अन्तः ज्ञान को छोड़ दीजिये बाहर से वे सब में रहते हुये भी अन्तः से अलग ही रहते हैं। जैसे जल में कमल रहकर भी उस जल से नहीं भीगते इसी तरह वह भी संसार में रहकर दूसरों के लिये मार्ग प्रदर्शित करते हैं और अलग रहते हैं।

वे ही वीर भोग्या बसुन्धरा कहलाते हैं। वे महापुरुष कानून नियम का पालन करते हुये संसार को भोगते आत्मा में रमते हुये चले जाते हैं। इसलिये आप सबने यदि आत्म स्वरूप नहीं प्राप्त किया तो कुसंस्कारी आपको कुचल डालेंगे। जिसमें अपना पुरुषत्व होगा अर्थात् आत्मबल होगा वह दुष्टों के अत्याचार में नहीं आयेगा जैसे जो नियम कानून जानते हैं वह दूसरों के

दबाव में नहीं आयेंगे और जो नहीं जानते उन्हें दुष्ट दबा लेते हैं।

गुरु गीता में कहा है—

आनन्द मानन्द करम प्रसन्नम्,
ज्ञानम् स्वरूपं निज बोध रूपं।
योगीन्द्र मीड्यम भव रोग वैधम,
श्रीमद गुरुं नित्यमहं नमामि ॥

जैसे आप कहते हैं यह काम करे बिना हमसे रहा नहीं जाता यानी इन्द्रियों के आप गुलाम हैं इन्द्रियाँ आपकी मालिक बनी हैं किन्तु जिसने यह जान रक्खा है वह इन्द्रियों की बाग-डोर अपने हाथ में रखता है। बताइये मालिक बनना अच्छा है या दास ? अपनी शक्ति से अपने आप काम न लें यह अपने में अटल विश्वास और पुरुषार्थ की कमी है इसीलिये आप अस-फलता पाते हैं।

एक तपस्वी था। किसी के घर में बैठकर तपस्या की। पहले जब उसकी थोड़ी-थोड़ी साधना थी तब उसके पास कुछ नहीं था जत तपस्वी की महिमा एवम् वैभव बढ़ने लगी तो उससे उस घर के मालिक नाराज रहने लगे। तपस्वी ने उस स्थान को छोड़ दिया। दूसरे स्थान पर रहने लगा और अपनी तपस्या को खूब बढ़ाया और सोचा कि अपने विपक्षी की बुद्धि ठीक मार्ग की ओर कर दूँ।

एक दिन वह कहीं जा रहे थे नारद जी मिल गये। उसने प्रणाम किया और अपने हृदय की बात सुना दी। नारद जी ने कहा, तुम भगवान् विष्णु के पास जाओ वहीं तुम्हारे इच्छित वर पूरे होंगे।

तपस्वी जी वहाँ भी पहुँचे। प्रभु अपने भक्तों का जप कर रहे थे। उसने श्रद्धा से प्रणाम किया। भगवान ने प्रसन्न होकर वरदान रूप में एक माला दिया और कहा, इससे जिसका भला चाहोगे हो जायेगा। वे तपस्वी बैकुण्ठ लोक से वापस आये और उस माला के प्रभाव से कहीं मुर्दा कहीं बुढ़िया को ठीक करने लगे। ऐसे अनर्थ से भगवान ने उससे माला ले ली। इस प्रकार अपनी सफलता का उसने गलत और अनुचित प्रयोग किया जिससे वह गिर गया। यदि वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों पर अधिकार रखता तो ऐसा अनर्थ न करता और प्रभु द्वारा प्रदत्त माला से हाथ न धोता।

तपस्या करने से ही क्या होगा ? यदि विवेक रहित तपस्या है। रावण की शक्ति ने रावण को ही नष्ट किया। सत्गुरु की लीला का थाह नहीं पाया जा सकता यदि वे दस कार्य करेंगे तो सब एक में ही उलझा देंगे। उनकी लीला अपरम्पार है—

निगम नेति शिव ध्यान न पावा।
माया मृग पाछे सो धावा॥

विश्व में रहना है तो ईश्वर के नियम को जानों, यानी सत्संग के द्वारा ज्ञान विवेक होना चाहिये। कहा है—

तप के वर्ष हजार हैं, सत्संगत घड़ी एक।
तो भी सरवर न करे, गुरुदेव किया विवेक॥

सदसङ्गत से ज्ञान है वह हमें प्राप्त करना चाहिये। तपस्या से तो केवल शक्ति प्राप्त होती है ज्ञान नहीं। यह शक्ति "स्वयं" को मार्ग भुलाकर नष्ट कर देती है। विवेक न होने से वह शक्ति हमीं को खा जाती है। हम भक्ति मार्ग पर चल ही नहीं पाते।

आधे ही रास्ते पर रह जाते हैं। धन से धर्म ही करना चाहिये तो हितकारी होगा। यदि उसी से अधर्म करेंगे तो हमारा क्षय हो जायगा।

मुख्य वस्तु स्वभाव को ही बदलना है तपस्या किया तो क्या हुआ। यदि गुण एवं स्वभाव में देवत्य नहीं आया।

महिमा नेति-नेति श्रुति गाये।
जग हित मानुष देह बनाए॥

नित्या-नित्य बताने वाले आपको लाखों प्रणाम !

भगवान जब संसार में आते हैं तो साधारण मानवी शरीर में क्यों आते हैं ? जैसे C. I. D. (गुप्तचर भेदिया) किसी बात की भेद लेने आता है तो वह वहाँ के वातावरण से अपने को पूर्ण रूप से मिला लेता है। वैसे ही परमात्मा मानव कल्याण के हेतु साधारण जनों की भाँति अवतरित होते हैं यदि वे मोर मुकुट लगाकर आये तो अपना कार्य नहीं कर पायेंगे। अतः कार्य की पूर्ति के लिये, जग के हित के लिये मनुष्य रूप में आते हैं। आपकी तरह वो भी उठना-बैठना, रोना-हँसना आदि करते हैं। आपके साथ रहते हुये भी अपने बनाये हुये कानून और मर्यादा का पालन करेंगे। नित्यानित्य को बताएँगे, सत्य बताएँगे और भक्त के लिये भगवान बन जाते हैं। और अपना वास्तविक दर्शन कराते हैं। जैसे महाभारत के समय कुरुक्षेत्र में जब भगवान, श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को विराट स्वरूप दिखाया तो वहाँ उपस्थित जन समुदाय उसको नहीं देख पाया। अर्जुन तो श्रीकृष्ण को भगवान समझ गए पर बहुत बड़ा वर्ग उनको एक साधारण अहीर और ग्वाला मानता था।

अतः भक्तों को वे निजस्वरूप में मिला देते हैं, ज्ञान दे देते हैं। गृहस्थी में भी आत्मज्ञानी भक्त जन होते हैं वे प्रभु को

पहचान कर निजस्वरूप का साक्षात्कार लेते हैं। खोज लगाने वाले के लिये वहीं मिल जाते हैं। कहा भी गया है :—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।

जैसे हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को असत् मार्ग में समझा और उसे हटाने का प्रयास किया ऐसी स्थिति में सत् कर्म पर रहने वाला निर्भय रहेगा। जैसे यदि आपके पास पैसा है तो आप पहले दर्जे (First class) में बैठ कर अच्छी तरह जावेंगे जिसके पास नहीं है वह हिचकिचाएगा।

जो भजन भक्ति करते हुए निर्मल हैं उन्हें सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। उनको कहीं भी किसी प्रकार का भय नहीं रहता। किसी काम के न होने में केवल आपके निश्चय एवं चाह की ही कमी होती है नहीं तो किसी कार्य के पूर्ण होने में सन्देह नहीं है।

संसार में चतुर चालाक और कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्ति की ही चलती है किन्तु उसे सर्वांगी होना पड़ता है। लेकिन अगर वह चार सौ बीस धूर्त हैं तो आज नहीं तो कल As your reap so your now अर्थात् जैसा बोओ वैसा काटो के अनुसार महान् दुःख क्लेश भोगेंगे। इस नर तन का चाहे जैसा उपयोग करो। इससे चाहे स्वर्ग लो चाहे नर्क आप स्वतन्त्र हैं। क्योंकि मानव तन शरीर बहुत हीं मूल्यवान् है। अनेक जीव हैं पर वह किसी दूसरे के हृदय पर अधिकार नहीं जमा पाते पर यह शरीर जो दैव दुलर्भ है वहीं हर वस्तु प्रत्येक जीव तथा अपने ही समान मानव तन वाले के हृदय पर अधिकार पा लेता है। यथा—

नर तन सम नहिं कवनेऊ देही, जीव चराचर जाँचत तेही।
नर्क स्वर्ग अपवर्ग निसेनी, ज्ञान विराग भगति सुभ देनी।
सो तनु धरि हरि भजहिन जे नर, होहि-विषय रत भेद भेद तर।
कांच किरिच बदले ते लेही, कर ते डारि परसि मनि देही।

बोलो श्री सत्‌गुरु भगवान की जै!

श्री गुरुवेनमः

जै जै महाबीर बजरंगी आपको लाखो प्रणाम !

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

हमने कहीं से सत्सङ्ग प्राप्त किया और उसे सन्दूक में बन्द करके रख दिया और इसी प्रकार झूठ बोलें, अपवित्र रहें तो ऐसे सत्सङ्ग से क्या लाभ। विद्यार्जन किया और फिर उसका उपयोग न करें तो क्या लाभ? घड़े में एक-एक कंकड़ी डालने से घड़ा धीरे-धीरे पूरा भर जाता है इसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा पुण्य करते जायँ तो उसका भी ढेर बन जायगा। इसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा पाप करने से पाप भी बढ़ जाता है। आप अपने किये हुये कार्य की तौल करिये या मापन करिये तो पता लगेगा कि कितना समय व्यर्थ करते हैं और कितना सार्थक। भागवत् में लिखा है कि राजा वेन पुण्य न करने का आदेश देता था इसी प्रकार यदि आपको कोई शुभ कार्य करने के लिये बल पूर्वक रोकता है तो वह ऊपर से चाहे जितना उछले एवं रोके पर अन्दर से उसका हृदय काँपता रहता है। शुभ कर्म से हृदय प्रसन्न

होता है। हरि का कोई भी नाम शुद्ध मन से लीजिये वह पूर्णता को पहुँचा देगा। किन्तु गङ्गा जल जैसे स्वयं ही शुद्ध तथा पवित्र होता है लेकिन Filter के द्वारा और भी लाभदायक हो जाता है इसी प्रकार राम नाम तो पवित्र है ही पर अनुभवी सद्गुरु द्वारा वही नाम सुन लेने से और भी अधिक शक्तिशाली हो जाता है।

एक राजा था उसके केवल एक ही पुत्र था। उसका स्वर्गवास हो जाने से राजा बहुत दुःखी हुये। एक भक्त उसी नगर से जा रहा था उसने लोगों को दुःखी देखा तो उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने गुरु द्वारा दिये हुए नाम को बड़ी निष्ठा से जपा था उसने सोचा इन दुःखी तथा सन्तप्त लोगों पर ही मैं अपनी शक्ति की परीक्षा कर लूँ कि मैंने इस नाम से लाभ उठाया या नहीं। ऐसा सोच कर उसने अर्थी ले जाने वालों से कहा, लाश इधर ले आइये। भक्त ने जल छिड़क दिया और मुर्दा जागृत हो उठा। इससे मेरा आशय यह है कि आप लोगों ने जो ज्ञानार्जन किया है उसका यदि उपयोग न किया तो क्या लाभ ?

गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये। हमें सदैव अपने गुरु की महिमा के लिये प्रयास करना चाहिये।

नर-नारि सब एक ही किस्म के नहीं हैं। देखने में एक हैं पर अन्तर है। बनावट अलग-अलग होती है जैसे (१) उत्तम, (२) मध्यम (३) अधम (४) लघु।

स्त्रियों की श्रेणी गुण स्वभाव जाति के अनुकूल होती है वैसे ही पुरुषों की भी जाति होती है जो ईश्वर की ओर से स्वतः बनी होती है। और सतगुरु तो सर्वाङ्गी होते हैं। जो जिस भी तरीके तथा युक्ति से श्री राम भगवान के चरणों में लगता है वैसी ही युक्ति

करते हैं और यह, वह अपना कार्य, तथा कर्तव्य समझते हैं। हम त्यागी के लिये परम त्यागी, प्रेमी के लिये परम प्रेमी का नाटक करते हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

सीता राम सीता राम सीता राम सीता राम !

———

गुरुदेव भगवान की जै !

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

एक भाई देहाती थे। उसके सगे सम्बन्धी सभी देहाती थे और खेती-बारी काफी थी। अतः आमदनी अच्छी थी। शहर में आने जाने से शहरी ज्ञान भी था। वे कुछ सत्सङ्ग भी करते थे। लेकिन घर की सभी वस्तुएँ ठीक से व्यवस्थित रूप में रक्खी न थीं जैसे बेहोश व्यक्ति के घर में अर्थात् पूर्ण अज्ञानी, सत्संग रहित और विचार शून्य की तरह स्थित है यह उसकी प्रथम अवस्था समझ लीजिये। दूसरी अवस्था होगी जब उसे कुछ होश आने लगा तब वह थोड़ा-थोड़ा उसमें सुधार करेगा। तीसरी स्थिति में वह बोलेगा, करेगा और समझेगा।

इस प्रश्न का उत्तर हमारे बिचार से यह है कि वह बेहोश को हाथ-पैर का ज्ञान रहता है पर वह कुछ कर नहीं पाता, वैसे ही उस व्यक्ति का हाल।

हम चैतन्य मूर्ति हैं, हम निर्माण कर्त्ता हैं परिस्थिति को बनाने वाले हैं परिस्थिति हमको नहीं बनाती। इन्द्रियों के भी हम ही मालिक हैं। किन्तु संसार में उल्टा चलता है, इन्द्रियों को अपना मालिक बना रक्खा है। इस प्रकार हममें कोई चैतन्यता

नहीं है हम बेहोश से हैं। यदि हीरा जैसा क्रियाशील होता तो वह पुरुषार्थ कर लेता होश होता है परम ज्ञान सीख लेता और निश्चित मार्ग पर चलता।

मनुष्य जैसे का सङ्ग करता है वैसे ही हो जाता है। यानी वातावरण का उस पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिए सद्गुरु अपने विशेष जनों को किसी अनजान से मिलने नहीं देते। एक ही कमरे में एक ही स्थान पर रहते हुये भी यदि उस वातावरण में कोई व्यक्ति असङ्ग रहना चाहे तो वह रह सकता है किन्तु फिर भी सङ्गति का असर पड़ जाता है। जुआड़ी की संगति करने से जुआड़ी अफीमची की सङ्गति से अफीमची, ध्यानी के सङ्ग से ध्यानी, सत्सङ्गी के सङ्ग से ज्ञानी आदि पूर्ण वैसे ही बन जाते हैं। इस प्रकार सत्सङ्गी की जितनी अधिक मात्रा होगी उतना ही अधिक अच्छा असर पड़ेगा। यदि एक ही आत्मा और दो देह ऐसा संग हो तो बिल्कुल ही वैसा यानी एक सा रूप बन जाता है।

एक ब्राह्मण थे। वह छोटे पन से ही गुरुकुल चले गए। आचार्यत्व प्राप्त किया पहले सत् मार्ग पर भेजकर उसकी शिक्षा देकर बाद में प्रापंचिक मार्ग बताकर दोनों मार्ग दिखाकर उनसे पूछा गया कि तुन्हें कौन सा मार्ग पसन्द है? जिस मार्ग की ओर जिस विद्यार्थी की प्रवृत्ति होता है वैसे ही मार्ग का उसे अवलंबन कराया जाता था। आजकल की तरह उस समय नहीं था विद्यार्थी के हित का ध्यान रखकर माता-पिता अपने हित अनहित का विचार न करके अपनी इच्छा से पुत्रों को चलाते थे सत्य और हित के विचार का अभाव न था वर्तमान काल में—

माता पिता बालकहु बोलावहिं।
उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं॥

उस ब्राह्मण ने वैराग्य मार्ग अपनाया और उसे यह वाणी हुई कि भागवत लिखो :—

जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ।

इसकी परीक्षा गुरु जी ने ली । जो खरे, सच्चे थे वे सत्य ही निकले जो दिखावटी थे वे झूठे निकले । भक्ति तो सागर है— एक पैर पग आगे बढ़कर पीछे हटना महा पाप है । डरकर पीछे हटना मरने से बढ़कर बुरा है । अनादि काल से चला आ रहा है कि भक्तों को लोग किसी न किसी तरह से कष्ट दिया करते हैं ।

जब प्रभु की दया होती है तब अनुकूल प्रतिकूल आदि परिस्थितियाँ आती हैं । किन्तु एक दिन वह असीम दया बरसा देते हैं । जितनी भक्ति होगी उसी प्रकार दया भी होगी । सोना जितना तपाया जाता है उतना ही चमकदार होता है ।

जैसे परमात्मा की पराभक्ति की जाती है वैसे ही चैतन्य रूप गुरु की भी भक्ति करनी चाहिये ।

यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरो ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशंते महात्मनः ।।

चैतन्य महाप्रभु की पराकाष्ठा भक्ति—

उस परमात्मा का भजन पूजन नियम और सत्सङ्ग श्रद्धा विश्वास पूर्वक कुछ दिन करने से निज स्वरूप की प्राप्ति होगी इन गृहस्थों के प्रापंचिक विचार बुद्धि से निःसंग रहना चाहिये हृदय से अलग रहना चाहिये । आप इनसे मन से मुक्त रहिये ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

अर्थात् इसलिये सर्व धर्मों को अर्थात् संम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्द घन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्यशरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

सारांश—

जैसे पुरुष का हम सङ्ग करेंगे वैसे ही बन जायेंगे इसलिये परमात्मा का सङ्ग और भजन करना चाहिये जिससे हम वैसे बन जायँ। सङ्ग के अभाव से हनुमान जी भी अपरिमित शक्ति को भूले थे। जिसको उन्हें जामवन्त ने प्रबोध कराया और वह अपने स्वरूप में आये एवम् अगम समुद्र लाँघ कर सीता माता का पता लगाया।

———

श्री गुरुवे नमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

श्री नारायण नारायण नारायण

योगवशिष्ठ में संसार को शून्य कह दिया है मरना मूर्छा है यह जो हम चल फिर रहे हैं इसको छोटी मूर्छा कहा है सब कुछ होते हुये भी हम कुछ नहीं कर सकते यह चैतन्य की कमी के कारण ही है। योगवशिष्ठ में एवम् रामायण में वृहत अन्तर है रामायण में द्वैत एवं अद्वैत ज्ञान दोनों ही है। सारी लोक लीला एवं लोक मर्यादाएँ लिखी हैं और योगवशिष्ठ में कुछ भी नहीं।

हमारे में चैतन्यता है लेकिन पूर्ण नहीं यानी ताकत के लिये जितनी दवा होनी चाहिये उतनी भी यदि नहीं है तो मरीज कैसे ठीक होगा। और जो कार्य करना है उसे कैसे करेगा ? एक बूढ़ा कारीगर था, वह धनोपार्जन के हेतु परदेश गया। बीच में नदी मिली उसने पार उतरने के लिये एक नाव वाले को बुलाया। उस नाव में चूना भरा था। मार्ग में चूने पर जल पड़ गया, चूने में आग लग गई और व्यक्ति जो उस नाव पर थे तैर कर निकल गये पर वह बूढ़ा जल गया। इन व्यक्तियों ने बूढ़े के घर का पता लगाकर उसके पुत्रों को चिट्ठी भेज दी कि बीच नदी में तुम्हारा

पिता जल कर मर गया। जब यह पत्र मिला तब बूढ़े के घर के लोग अचम्भे में पड़ गये कि कहीं जल के बीच में भी कोई जल कर मरता है ? किसी को यह बात समझ में न आई इतने में एक अनुभवी मिस्त्री व्यक्ति आ गया और उसने कहा—कि बिलकुल सत्य बात तो है। देखो, नाव में कच्चा चूना भरा होगा। (बूढ़ा कारीगर राजगीर था ही) मल्लाह और दूसरे तैरने वाले तैरकर निकल गये होंगे पर वह बूढ़ा तैरना नहीं जानता था कच्चा चूना में जितना पानी डालो वह जल ही जाता है अतः वह बूढ़ा जल कर मरा। सतगुरु की प्राप्ति हो, वचन पर विश्वास हो, संयम का पथ हो, संसार की आशा न हो तो सतगुरु ही कामधेनु घर हैं, कल्पतरु हैं।

तारे जितने गगन में शत्रु भी उतने होय।
कृपा होय रघुनाथ की बाल न बाँका होय॥

दुर्योधन की अक्षौहिणी सेना पराजित हो गई और पाँडव के पाँच भाई केवल एक भगवान श्रीकृष्ण का सहारा लेने पर जीत गये क्योंकि पांडव श्रीकृष्ण को अपना परम गुरु मानते थे।

परमात्मा की प्राप्ति कोई कर सकते हैं और कोई नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यही है कि उनमें अटल विश्वास नहीं है। भगवान न किसी के दुश्मन हैं न मित्र हैं वह तो हमारी ही कमी है। भक्ती के प्रारम्भ दिनों की बात है कि बीमारी के कारण हमसे बिस्तर से न उठा जाय, हाथ-पैर न हिलाया जाय सबने उठने को मना कर रक्खा था। हमारे मन में हुआ, किस प्रकार भगवान को उठ कर प्रणाम करें ? हम क्यों नहीं चल सकते ? थोड़ी देर में सब लोग इधर-उधर हो गये। हम झट से उठे। उठते हुए सिर में चक्कर आया किन्तु साहस करके

दिवाल के सहारे झट से भगवान के मन्दिर में घुस गये विश्वास के साथ प्रणाम किया—रघुपति राघव राजा राम का कीर्तन किया, उसी दिन से हम बिल्कुल स्वस्थ हो गये। मुझे तो पहले भी विश्वास था ही लेकिन मेरे विश्वास पर और भी विश्वास की पक्की छाप लग गई। कोई प्रभु के समीप पहुँच जाता है कोई दूर खड़ा रहता है इसका क्या कारण है?

एक सेठ के पास एक बकरी तथा कुत्ता था—कुत्ता को वह सूखी रोटी देता था। बकरी को हलुआ पूड़ी। इस पर बकरी को अभिमान हुआ एवं कुत्ते का तिरस्कार करते हुये कहा—"मैं सेठ की प्यारी हूँ और तू अप्यारा। इस पर कुत्ता मुस्कराया तथा चुप रहा। वह बुद्धिमान था इसलिये चुप रहा क्योंकि वह जानता था कि बकरी को हलाल किया जायेगा।

सारांश—जो लोग अज्ञान तथा अविवेक वश कुसंगति अपनाते हैं और भगवान से अपने अवगुण को उन्हें सर्वव्यापी न समझ कर छिपाते हैं वे एक दिन अवश्य कसाई के बकरे की तरह मारे जाते हैं, पर भगवान के भक्त जो साधन पूजन में लगे रहते हैं उन्हें पूर्व कर्मानुसार दुःख मिलता है किन्तु कुछ दिन पश्चात् उसका परिणाम अच्छा ही मालूम पड़ता है। भगवान के भक्तों को जो दुःख या परेशानी दिखाई पड़ती है वह माया और भ्रम ही है। भगवान के भक्त ही परम सुखी और अच्छे हैं। बकरी पन को अच्छा न समझो हम कुत्ते की तरह भगवान के चरणों में रहेंगे, उनकी रक्षा में रहेंगे, उनका दर्शन पर्शन करेंगे तभी ऐसा होगा। जिसके पास दुर्बीन है वही दूर की चीज देख सकता है। इसी प्रकार विचारवान की दृष्टि से ही यथार्थता देखी जाती है। दूरदर्शिता मानव में होना चाहिए। भगवान का वराह अवतार हिरण्यक्ष के बध के लिए ही हुआ था। रूप

रंग तथा बाह्य ज्ञान से क्या होता है ? जब तक सद्गुरु भीतरी ज्ञान न दें।

राम कृपा नासहिं सब रोगा।
जो यहि भाँति बने संयोगा॥
सतगुरु वैद्य बचन विश्वासा।
संयम यह न विषय कर आसा॥

भगवान सद्गुरु ही कल्पवृक्ष हैं इसका आपको विश्वास कैसे हो ?

जो भाषा आपको आती है उसी के द्वारा जो बोला जाय आप समझ सकते हैं। दूसरी भाषा में कुछ बोला जाय तो आप नहीं समझ सकेंगे। इसी प्रकार हमने सद्गुरु को ही कल्पतरु कहा है तो आप नहीं समझ सकेंगे। वही श्रीकृष्ण किसी के लिए ग्वाल, कंस के लिए काल, गोपियों के लिए भगवान, इसका क्या कारण है ? इसी प्रकार भगवान सद्गुरु जितने लोग हैं उनके लिए उतने प्रकार से दिखाई देते हैं। जैसी जिसकी भावना होती है वह हरि को वैसा ही समझता है। इस वर्तमान युग में जो जैसा होगा वह दूसरे को भी वैसा ही समझेगा :—

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी।

भक्त चार प्रकार के होते हैं :—आर्त्ती, अर्थार्थी, जिज्ञासु, और ज्ञानी।

मनुष्य यदि प्रबल पुरुषार्थ करे और जिज्ञासा रक्खे तो सद्गुरु की शरण में आकर उन्नीस से बीस हो सकते हैं जैसे आर्त्ती जिज्ञासु, हो सकता है या जिज्ञासु ज्ञानी हो सकता है।

हम सतगुरु रूपी कल्पतरु के नीचे जाकर पुण्य कर्म करें तो समस्त कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं। यदि आप कहिये कि हम सद्गुरु की शरण में आकर कुछ नहीं पा सके और जैसे आप बिना हार पहने हुए शीशे के सामने जायँ और कहें कि हार तो दीखता ही नहीं है तो शीशा क्या करे ? क्योंकि कमी आप में है न कि शीशे में।

कोई विद्यार्थी मास्टर के पास जाय यदि विद्यार्थी पुरुषार्थी, पढ़ने वाला, सच्ची लगन वाला है तो वही मास्टर बहुत अच्छा है पर मास्टर अच्छा कितना ही हो यदि विद्यार्थी ही पुरुषार्थी न हो तो मास्टर का क्या दोष ? भगवान गुरुदेव की ही रगड़ से श्रद्धा-विश्वास तथा पुरुषार्थ की उत्पत्ति होती है।

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

सद्‌गुरु भगवान की जै।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः॥

मेरे भगवान सद्‌गुरुदेव ने जहाँ तपस्या की थी वह स्थान श्री सद्‌गुरुदेव के जन्म स्थान से बीस मील दूर पर था। ज्योंही उनको वैराग्य हुआ त्योंही उन्हें एक साथी मिला उसने कहा चलो—हम लोग काशी चलें, वहीं भगवान से मिलने की तपस्या करें। उस समय गुरुदेव की अवस्था १९ वर्ष की थी। उन्होंने कहा क्या बनारस में ही ईश्वर मिलते हैं और कहीं नहीं मिलते? साथी ने कहा, वह पवित्र स्थान है। फिर उसने कहा—दीपक जला कर उसकी लौ एकटक देखो तो भगवान मिल जाते हैं। गुरुदेव ने कहा—कहीं दीपक की लौ देखने से भगवान मिलते हैं? हम तो ऐसा नहीं करेंगे। किन्तु अल्पावस्था थी। साथी की बात में आ गये, और दोनों की दीप साधना प्रारम्भ हो गई। साथी की आँखों से पानी गिरने लगा और उसने कहा, हम तो ऐसी साधना से बाज आये। अब हम साधना नहीं करेंगे और वह घर लौट गये। गुरुदेव काशी से अन्यत्र चले गये। वहाँ जाकर छः मास की गुफा

ले ली। जब गुफा से निकले उनकी विचित्र अवस्था थी। वह प्रकाश को देख नहीं सकते थे।उनका रूप विचित्र दिखाई देता था। इसके पश्चात् विचरण करते हुए वह अपने सद्‌गुरु के पास पहुँचे। वहाँ ईश्वरकी प्राप्ति के लिए अनन्य रूप से सेवा करने लगे। सद्‌गुरु भी उनकी भक्ति देख कर प्रसन्न रहने लगे थे।

उन्होंने परीक्षा लेने ले लिए उनको कंडी पाथने के लिए आज्ञा दे दी। गुरुदेव बड़ी प्रसन्नता से दो मास तक कंडी पाथते रहे। एक दिन सद्‌गुरु माँ ने कंडी मांग कर उसे तोड़ कर देखा इसे देख कर उन्होंने गुरु को परीक्षा में पास पाया और फिर लिखने-पढ़ने का काम दे दिया। कुछ दिन बाद गुरु माँ ने गुरु-देव को छः मास की गुफावास की आज्ञा दी। गुरुदेव आज्ञा शिरोधार्य करके वैसा करने लगे (बरगद, इमली, पीपल वाले साधु की कथा) इसी प्रकार गुरु धैर्य धर कर सेवा करते रहे। एक दिन गुरु माँ ने विचित्र स्वरूप धारण करके गुरु की परीक्षा ली और कहा, कैसा ज्ञान सीखने की तुम साधना कर रहे हो? गुरु ने कहा, सब कुछ मुझे मिल रहा है। आपकी शरण मेरे लिए सब कुछ है।

इसी प्रकार वह परीक्षा देते हुए।तथा साधन करते-करते अपनी साधना में सिद्ध हो गये। उस भक्त वत्सल भगवान की महिमा अगाध और अपार है। मेरा कहाँ का पुण्य है जो उनकी मेरे ऊपर इतनी दया है। मेरे सद्‌गुरुदेव ने अपनी इच्छा से समाधि ली थी। उन्होंने समाधि लेने से छः मास पूर्व ही बता दिया था।

कलकत्तां में एक स्थान है जहाँ पर सिद्ध पुरुषों की खोपड़ी यानी मस्तिष्क रक्खा गया है। उस स्थान पर जाकर साधक जो

विचार करता है या साधना करता है शीघ्र ही फलीभूत होता है मेरे गुरु ने भी इसी तात्पर्य से समाधि बनाने का आदेश दिया था।

भगवान् मेरे परम गुरुदेव की महिमा अनन्त है, अपार है। आप मानें या न मानें हम तो उन्हें रघुनाथ जी ही मानते हैं। हम गुरु की सेवा तथा आराधना में तत्पर हो जाते थे। एक केन्द्र बना कर जो उसके प्रति कर्म करता है वह उसके लिए नहीं अपने लिए ही करता है।

हम जिसके प्रति जैसा करते हैं वैसा उसके लिए नहीं करते बल्कि अपने लिए करते हैं। बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है करते-करते हम गुरु के सदृश पवित्र, निर्मल ज्ञान स्वरूप, तद्रूप हो जाते हैं। गुरु के समान दूसरा कोई इतना अपना हितैषी नहीं हो सकता। गुरु तो बहुत ही दयालू होते हैं। उनके पास जाकर उनकी दया से कोई वञ्चित नहीं रह सकता। वह तो उस वृक्ष के समान हैं जो ढेला, कंकड़-पत्थर मारने पर भी हमारी झोली फल से भर देता है। ऐसे दयालू और करुणा सिन्धु सद्गुरु होते हैं।

गुरु की सात बार पूजा करो तो महापुण्य है किन्तु लोग नहीं करते। इसीलिए गुरु-पूजा की नियम, विधि बनाई गई है। भगवान गुरु के चरण कमल में जो जितनी निष्ठा रख सके रक्खे। भगवान गुरु केवल मेरे ही नहीं है सबके हैं। सभी को उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए। आप सब नहीं चाहते भविष्य उज्ज्वल और उन्नतिशील बने और भूले-भटके पथ से एक किनारे लग जायँ। यदि आप मुझे ही समझना चाहें तो नहीं समझ सकेंगे। अभी इस रूप में देख रहे हैं, थोड़ी देर

पश्चात् अन्य रूप में । हमारा कहने का तात्पर्य तो केवल उदाहरण के तौर पर है यह नहीं कि हम ही भगवान हैं ।

भगवान श्री कृष्ण जी की लीला देखकर नारद जी मोहित हो गये थे । एक दिन की बात है—जब मेरी साधना अवस्था थी मध्याह्न में १२ बजे थे मैंने श्री गुरुदेव जी से आग्रह करके कहा—आप शीघ्र मुझे भगवान के दर्शन कराइये नहीं तो हम गंगा जी जाते हैं । भगवान गुरुदेव जी ने समझाया लेकिन हम नहीं माने । गुरुदेव उस समय मुझसे गीता पढ़ाकर सुनते थे । हमको जब इस तरह कहते देखा तब उन्होंने दूसरे को पढ़ाना सुरू कर दिया । मैंने सोचा इनकी सेवा तो हो ही रही है और हम गंगा जी चले गये । वहाँ से जब आये तो गीता समाप्त हो चुकी थी । गुरुदेव ने कहा—भगवान देख आई बेटी ! मैंने कहा दर्शाने वाले तो आप हैं हम तो इसलिए गये थे जिससे आप शीघ्र दर्शन करा दें । आपकी सेवा में त्रुटि तो नहीं हुई ? गुरु जी ने कहा विश्व तो मेरा है किसी के बिना काम तो नहीं रुकता ।

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

———

॥ श्री गुरुवेनमः ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

श्री गुरु पूर्णिमा का उत्सव चल रहा है। भगवान की भक्त वत्सलता पर कथा कही गई। बाद में श्री गुरुजी ने भी समझाया और कितना सुन्दर श्री पंडित जी ने भी कहा। किन्तु वे वचन पूर्ण रसास्वादन तथा कल्याणकारी तभी होंगे जब उन कहे हुए उपदेशों को कर्म में ढाल लें। विविध प्रकार के भोजन पकाने की कल्पना करें किन्तु दो पैसे की तरकारी मंगाने की भी सामर्थ न हो तब क्या स्वादिष्ट भोजन का स्वाद मिल सकेगा? इसी प्रकार यदि आप नित्य कर्म में कहे हुये को परिवर्तित करते रहेंगे तो वही भगवान —वही आप सब प्रत्यक्ष दर्शन पायेंगे। पंडित जी ने कहा भगवान इतने भक्त वत्सल्य होते हैं कि अपने भक्तों के कार्य को स्वतः ही सम्भालते हैं लेकिन एक बात है कि आपकी पुकार गजेन्द्र और प्रहलाद, ध्रुव, द्रोपदी के समान हो। इस गुरु पूर्णिमा के उपलक्ष में आप सब पर श्री गुरुदेव भगवान की दया हो, सुबुद्धि हो शुद्ध भक्ति बढ़े।

———

गुरुर्ब्रह्मा गुरु र्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

पहले समीप की बात करनी चाहिये क्योंकि वही शीघ्र फलीभूत होती है। दूर की बात बाद में करना चाहिये क्योंकि वह देर में फलीभूत होती है। सात दिन तक गुरु महिमा के बारे में आप लोगों ने बहुत सुना है। करने वाला उतने में ही बहुत कुछ कर सकता है. दूसरे समझने वाले समझ भी न पायेंगे समझने वाला समझ कर, कर भी लेगा। वह जिस कार्य के लिये आते हैं अपने मतलब की बात पाकर अपना कार्य कर लेते हैं जैसे भेद लेने वाले आपके मन के भेद को अपनी लप्प-चप्प बातों में बहका कर जान लेते हैं और आप कुछ समझ नहीं पाते और सब बातें अपना परम हितैषी समझ कर कह डालते हैं और आपको कुछ भास नहीं हो पाता और उसका कार्य हो जाता है इसी प्रकार जो समझेंगे वह अपनी बात उसमें से ले लेंगे और उस पर अमल करेंगे।

नौका से जाने वाला जैसे नदी के पार उतर जाता है, । और नदी में पैदल जाने की जो कोशिश करता है वह डूब जाता है। इसी प्रकार सतगुरु रूपी मल्लाह का सहारा लेकर भक्ति रूपी नैया में बैठ कर जो चलता है वह भवसागर रूपी नदी से पार हो जाता है। बाकी सब डूब जाते हैं। विषय वासना में जो आसक्त हैं वे सब डूब जाते हैं। बड़े का ही छोटे अनुसरण करते हैं। गीता में कहा है—

यद्यदा चरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुबर्तते ॥

क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार बर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं ॥२१॥

भगवान ने यह भी कहा है कि यदि मैं कर्म न करूँ तो सभी लोक भ्रष्ट हो जाय :—

उत्सीदेयुस्मि लोका न कुर्या कर्म चदहम ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

तथा यदि मैं कर्म न करूँ तो यह सब भ्रष्ट हो जाय और मैं वर्ण संकर का करने वाला होऊँ तथा सारी प्रजा को हनन करूँ अर्थात् मारने वाला बनूँ ।

इसलिये मुझे सावधानता पूर्वक धर्म-कर्म का अवलम्बन ले कर चलना पड़ता है ।

प्रथम आप क, ख, ग, घ ही पढ़ते हैं तब कहीं एम० ए० पास कर पाते हैं इसी प्रकार मन को केन्द्रित करने के लिये साधनावस्था में मूर्ति स्थापना करने की परम आवश्यकता है ।

मूर्ति के द्वारा हमारा भाव केन्द्रीभूत हो जाता है तथा शनैः-शनैः अन्तःकरण शुद्ध होने लगता है ।

मनुष्य अनेक प्रकार की कल्पनाओं के महल बनाता है, पुत्री-पुत्र की शादी विवाह में अपनी शान-शौकत में कितना खर्च करता है किन्तु इन सबके करने से क्या लाभ ? यह व्यय व्यर्थ का होता है न तो लोक बनता है न परलोक। अपने घर वालों को

खिलाया तो क्या खिलाया। दान भी पात्र को देख कर दिया जाता है। किसी दुःखी शरीर की ही सेवा नारायण सेवा है किन्तु यह व्यय को व्यर्थ करना किसी में भी नहीं गिना जाता।

ब्रह्म तो परिपूर्ण है सब जगत में व्याप्त है "सर्वं खलल्विदं ब्रह्म"। .जो जैसा करता है तत्काल उसको वैसा ही फल मिलता है। दान भी अपनी हैसियत के अनुसार होता है। भगवान तो कुछ नहीं चाहते केवल शुद्ध प्रेम का दान चाहते हैं। जिसके पास अधिक धन है और वह अपने भोग-विलास में खर्च करता है तो वह भगवान को पसन्द नहीं आ सकता। जिसके पास कुछ भी नहीं है और वह केवल तुलसी पत्र ही चढ़ाए भगवान के लिए वही ठीक है। एक राजा अगर दो पैसे की माला चढ़ाता है तो ईश्वर का अपमान करता है तथा उसकी निकृष्ट निष्ठा को देख कर ईश्वर उसे बस दो पैसे लायक ही दरिद्र बना देते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति त्रिकालदर्शी हो सकता है। शीशी में जो वस्तु भरी होगी वही भूमि पर गिरेगी। इसी प्रकार जैसा कर्म करेंगे वैसा ही फल मिलेगा। प्रभु के लिए श्रद्धा अर्पित करो या न करो लेकिन वह तो स्वतः ही सर्वाङ्गी है। वह कोमल में अति कोमल तथा कठोरता में वज्र से भी अधिक कठोर है।

सन्त का शाप भी आशीर्वाद रूप एवं कल्याणकारी होता है। गौतम मुनि ने अपनी स्त्री अहिल्या को शाप दिया पर उन्हें भगवान श्री राम का दर्शन हुआ।

श्री सतगुरु को भगवान न भी कहो तब भी यह तो समझें कि गुरु ईश्वर के चरण कमलों में पहुँचाने वाले हैं। अतः हृदय से ही उनकी दया की स्तुति करते रहना चाहिए। आपके

गुरु मानने के लिये दो फल चढ़ाने का कोई कर्ज की अदायगी नहीं। आप नहीं आते न आइये पर हृदय में परम पवित्र श्रद्धा होनी चाहिये। वेदयालु हैं हृदय तो देखते हैं। यह गुरु परम्परा आदि-अनादि काल से है और उनकी दया भी अनादि काल से चली आ रही है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम देव देवः॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै!

॥ श्रीमन् नारायण नारायण नारायण ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वंम् मम देव देव :

मेरी भक्ति के प्रारम्भ काल में नैपाली प्रथा के अनुसार स
लोगों ने एक साल तक पूजा आदि करने को मना कर दिया
मैंने एक पर्दे में छिपा कर भगवान के युगल चरण अङ्कित करवे
पूजा करना शुरू किया। मैंने एक दिन सोचा कि मैं जहाँ-जह
चलूँ घूमूँ भगवान की फोटो ही फोटो दिखाई पड़े अतः मैंने
ढेर सारी भगवान की फोटो मँगाने को कहा। लाने वाले व्यक्ति
ने एक ही रूप की चालीस-पचास फोटो ला दी तब भी आव
श्यकता की पूर्ति नहीं हुई। दूसरे दिन फिर मँगवाया ४०, ५
फोटो और सारे घर में लगाया और अन्यों को भी दे दिया औ
हम उसी फोटो की पूजा करने लगे। इससे थोड़े ही दिन पश्चात
एक दिन रामायण पढ़ रहे थे उसमें एक प्रसंग में अभिवादन से
'जयजीव' कहा गया। मैंने गुरुदेव से पूछा, वर्तमान में क्या कहन
चाहिये? गुरुदेव ने कहा जयनारायण। जयनारायण होते-होते
कुछ दिनों में लोग मुझे नारायण कहने लगे। एक दिन मैंने
विचार किया, लोग मुझे ऐसा क्यों कहने लगे? अपने आ
हृदय में भाव उठा—देखो जैसी भावी होनी होती है वैसा ह
होता है। मैंने नारायण की पूजा की, सभी को फ़ोटो बाँटा फल

स्वरूप नाम मिला। जैसा भोजन बनाया जायगा वैसा ही खाने को भी मिलेगा। जैसा कार्य करोगे वैसा ही फल मिलेगा—

जो पहिले कीजे जतन, सो पीछे फलदाय।
आग लगे खोदे कुआँ, कैसे आग बुझाय॥

मानव जीवन को सफल बनाने के लिये सत्संग की परम आवश्यकता है। यदि केले के पेड़ को काट कर उसके खम्भों को छीला जाय तो केवल छिलका-छिलका ही निकलेगा। गूदा कुछ भी नहीं है इसी प्रकार मेरे शरीर में छिलका ही छिलका है उसके अन्दर केवल एक ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसी का अवलम्बन लेकर हम चल रहे हैं। अपने ऊपरी शरीर और सूक्ष्म शरीर भीतरी वस्तु तत्व को दो मान कर सत्संग करना चाहिये। ज्ञान भी दो प्रकार का है परा ज्ञान प्रथम और अपरा ज्ञान द्वितीय। यानी प्रकाशमय ज्ञान और अंधकारमय ज्ञान। जो ज्ञान निज स्वरूप की प्राप्ती कराये वही ज्ञान है अथवा परा-विद्या है। दूध और पानी को अलग करने का ज्ञान एवं सामर्थ हंस को है। वैसे ही चीनी और बालू को अलग-अलग करने का ज्ञान एवं शक्ति चींटी को ही है।

हीरा, मोती, पोखराज, झूठी मोती तथा इमीटेशन आदि को अलग-अलग करने वाला जौहरी ही होता है। जो नासमझ हैं वे झूठे पत्थर की चमक देख कर उसे ही हीरा समझ कर ले लेते हैं। इसी प्रकार पुस्तकों में अन्य उदाहरणों के साथ ज्ञान मिश्रित है किन्तु उस ज्ञान को जानने वाला जो होता है वह सार तत्व निकाल कर सब कुछ पा लेता है। जो जहाँ तक के होते हैं वहीं तक की वस्तु ले लेते हैं। दरिद्र के लिये एक रुपया

बहुत है। एक सेठ के लिये उसकी कोई कीमत नहीं है इसी प्रकार ज्ञानी की भी अवस्था होती है।

गुरु को जो मानुष मानते।
ते नर कहिये अंध॥
दुःखी होय संसार में।
आगे यम के फंद॥

यह अपराज्ञान वालों के लिये शिक्षा है जो इस तत्व को नहीं जानते पराज्ञान वालों के लिये—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

पुस्तकों में अनेक रत्न हैं किन्तु उसका परखैया भी तो हो। भृकुटी में भगवान दीखते हैं, कैसी अन्धी भावना है ? भगवान सन्मुख दीखते हैं कि भृकुटी में ?

जो संस्कार हीन हैं उनको सत्य वस्तु समझ में ही नहीं आती और वे यथार्थ लाभ से वंचित रह जाते हैं। भाग्यहीन होने से लाख सम्पति होने पर भी किसी कारण से या पाप के कारण उसका भोग नहीं कर पाता। केवल पूजा पाठ ध्यान के द्वारा सत्य प्रकाश की प्राप्ति नहीं हो सकती जब तक सत्संग नहीं मिल पाता। नाना प्रकार के पुण्य कर्म अवश्य करना चाहिये इससे धर्म होता है, पाप कटता है। यह सब उपर्युक्त कर्म करना मनुष्य जीवन का धर्म है किन्तु सत्संग इसके ऊपर की वस्तु है। सत्संग अनेक पापों से बचाता है। यह एक कवच है। पाप रूपी शस्त्र से बचने के लिये यह ईश्वर को पहनवाता है। सत्संग ज्ञान एवं ईश्वर अलग चीज नहीं है। धर्म कर्म इसका अंग है।

किसी एक वस्तु के अभाव के कारण लोग धन, सम्पत्ति, विद्या, सुख होने पर भी अशान्त हैं ? कथा पुराण सुनते हुये धर्म-कर्म करते हुये किस एक चीज की कमी है ? जो ईश्वर से वंचित रह गये ? जीव यदि एक योनि में अपने स्वरूप को प्राप्त कर ले तो जन्म-जन्म के लिये छुटकारा पा लेता है। फिर पुनः इस उलझन में वह नहीं उलझता उससे वह बच जाता है।

भगवत् प्रेम में भी कई प्रकार के प्रेम हैं जैसे मैया का, सखा का, पिता आदि का। किन्तु प्रेम ऐसा करना चाहिये जिससे उसी स्वरूप को प्राप्त हो जाय तभी आप सब उलझनों से मुक्त हो जायेंगे। मामूली ज्ञान एवं सत्संग सतगुरु का न समझो इसके बराबर सत्संग दूसरा नहीं है। जो बड़े भाग्यशाली संस्कारी होंगे वही उनकी निष्ठा पर चलेंगे, उनको मान सकेंगे। बाकी इधर-उधर भटकते ही रह जायेंगे। जैसे पुष्प बाटिका में अनेकों राजकुमार आये और ठहरे एवं उनकी चर्चा माँ जानकी ने सुना किन्तु कुछ नहीं हुआ। भगवान राम की चर्चा सुनते ही उनका हृदय उनके चरणों में झुक गया। वह संस्कार वैसा ही बना था सीता जी समझ गईं यही मेरे भावी होने वाले पति हैं। मेरा हृदय उनके चरणों में झुक रहा है। संस्कारी आत्मा को समझने वाला वीर दूसरी ही गति मति का होता है।

समय को महत्व देना चाहिये। जो एक समय बीत जाता है वह फिर लौट कर नहीं आता। जैसे पक्का फल जो गिर पड़ा, बहुरि न लागे डार। और भी Time and tide waits for none. एक मूर्ख होता है और दूसरा ज्ञानी। मूर्ख वही है जो जान-समझ-बूझकर किसी कार्य को न करे। आप मनुष्य हैं आपके पास बुद्धि ज्ञान-समझ है, फिर भी जीवन यों ही बिताते चले जा रहे हैं। संसार का कर्तव्य कर्म करते हुये एक वीर के

सद्दश्य धर्म-कर्म करते हुये गुरु निष्ठा को बढ़ा लीजिये; उनके लिये प्राण देने को तत्पर रहिये।

कहावत प्रसिद्ध है दस का बोझ एक की लाठी। एकदम हम कहाँ तक करें? आप लोग भी भक्ति बढ़ाने, भक्ति की महिमा गाने में सहायक हो जाइये। दूसरे को भी पुण्यशील बनाइये, आप भी बनिये। बसूला काट बुद्धि न बनाइये तेलिया बुद्धि बनाइये। जितना हम बताते हैं उससे और भी अधिक बुद्धि बढ़ाइये। अकर्मण्य और आलसी न बनिये।

श्री गुरुदेव भगवान की जय!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्यां द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरु देवन के देवा।

× × ×

सर्वं सिद्धि फल देत गुरु, आपहि मुक्ति करेवा।

× × ×

जय जय सतगुरु दीन दयाला, आपको लाखों प्रणाम।

———

गुरुर्ब्रह्मा गुरु विंष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

जिसकी जैसी भावना होती है वैसे ही वह उस वस्तु को देखता है, Every thing looks pale to a jaundiced eye. अर्थात् पीलिया के रोगी को सभी वस्तुयें पीली नजर आती हैं। ग ंगा जल तो पवित्र स्वास्थ्यवर्धक है ही किन्तु उसका चरणामृत रूप बना कर प्रयोग में लाने से और भी अधिक महत्वशील बन जाता है। एक निश्चय करने से मनुष्य संसार में क्या नहीं कर सकता ? कल्याणकारी शिव भी गुरु को ही (विष्णु भगवान) भज कर शिव रूप पूजनीय बने। फिर भला बताइये मानव का बिना गुरु के कहाँ से कल्याण हो सकता है ? भगवान जो चाहेगा करेगा और करके छोड़ेगा। वह यदि चाहता है तो इतना लम्बा हाथ करके छोड़ता है कि एक हाथ में वह सबको समेट लेता है जैसे भगवान ने वामन अवतार लेकर लीला किया और उनके तीन पग नापने से धरती न मिटी यानी वह सर्वशक्तिमान हैं जो चाहें, जैसे कर लेते हैं। यदि छप्पन प्रकार का भोजन आप बनावें पर उसमें नमक न डालें तो वह सब भोजन फीका ही रहेगा और इतना सारा परिश्रम भी व्यर्थ रहेगा। इसी प्रकार लाख भक्ति करे, किन्तु बिना गुरु के निस्तार नहीं है। मनुष्य का निश्चय हो जाने से अनहोनी भी होनी हो जाती है। वही सच्चिदानन्द भगवत स्वरूप हो करके भी भला आप चाहे क्या वह नहीं हो सकता है। इसके लिए ज्ञान पहले सीखो फिर जो

चाहो सो करो। ज्ञान एवं कर्म हो तो मनुष्य सब कुछ कर सकता है।

(निश्चय दृढ़ होना चाहिये)

दृष्टान्त

एक चिड़िया थी, उसके अंडे समुद्र बहा कर ले गया। जब उसने समुद्र की ऐसी धृष्टता देखी—उसको बहुत दुख हुआ और उसने निश्चय कर लिया कि मैं समुद्र का पानी उलिच कर अपने अंडों को निकालूँगी। ऐसा निश्चय करके अपनी चोंच से समुद्र का पानी उलचने लगी। अगस्त जी ने चिड़िया की इस क्रिया को देखा तथा ऐसा करने का कारण पूछा—चिड़िया ने सब बता दिया। पहले अगस्त जी ने समुद्र से कहा—कि आप इसके अंडों को दे दीजिये किन्तु जब समुद्र ने नहीं दिया—तब अगस्त जी ने उसके समस्त जल को पी लिया तथा चिड़िये के अंडों को चिड़िया को दे दिया। यह है दृढ़ निश्चय तथा उसके लिये प्रबल पुरुषार्थ का फल।

———

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा भी भगवान करते हैं, वह अच्छा ही करते हैं, यह सत्य वचन है।

"कृष्ण जिनका नाम है गोकुल जिनका धाम है,
ऐसे श्री भगवान को बारम्बार प्रणाम है।"

कौरव पाँडव युद्ध कराई, गीता में उपदेश सुनाई।

वही राम नाम लेकर भिखारी भित्ता माँगते हैं वही राम नाम ठग लेते हैं, वही राम नाम गृहस्थ भी लेते हैं। नाम वही किन्तु भाव के कारण उसी नाम मणि से कल्पतरु बन जाता है, और कोई भिखारी का भिखारी बना रहता है।

नाली के कीड़े नाली ही पसन्द करेंगे, यदि उनको सुन्दर स्वच्छ निर्मल जल में छोड़ दो उनका प्राण निकल जावेगा। इसी प्रकार निर्मल जल में रहने वाली मछली को कीचड़ में छोड़ दो तो मर जायेंगी। अपने संस्कार और प्रकृति के अनुसार मनुष्य किसी स्थिति को पसन्द करता है। हम लोगों का स्वभाव

ही भजन-पूजन पठन-पाठन करने का है, जिसमें लोक कल्याण और हमारा कल्याण दोनों ही है। हमारे लिये तो रात-दिन ही त्योहार है। सदैव प्रभू का जन्म दिवस है। सदैव वह थे और सदैव ही रहेंगे। हमारे और आपके भाव में बहुत अन्तर है इसी अन्तर को मिटाने के लिये ही तो ज्ञान और सत्संग है। द्वैत को मिटाकर एक कर दो। भगवान सीताराम राधेश्याम गुरु सब एक ही हैं दूसरा कुछ नहीं है—

गुरु गोविन्द तो एक है, दूजा यदु आकार।
आपा मेटि जीवत मरै, तौ पावै करतार॥

जिन पर भगवान की परम कृपा होती है उन्हीं को परम विश्वास एवं निश्चय प्राप्त होता है। अपने आप दृढ़ लगन निष्ठा होने से आप सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे। यों तो होनहार होकर रहती है किन्तु होनहार टल भी जाता है और आपका निश्चय सफलता प्राप्त कर लेता है।

जैसे दूध नापने का थर्मामीटर दूध में डालते ही तत्काल दूध कितना है पानी कितना है पता लगा देता है इसी प्रकार सन्त पुरुष रूपी थर्मामीटर हृदय भी आपका हृदय कितना स्वच्छ-निर्मल विशुद्ध है, कितनी अशुद्धता है, पता लगा लेता है। उसके पास क्या है? केवल राम नाम का ही तो बल है आप कहाँ कर पाते हैं? एक दृष्टान्त—

एक जिज्ञासु को गुरु ने राम नाम जपने का आदेश दिया। १२ वर्ष बाद वही राम नाम पुनः मंत्र रूप में दिया। शिष्य ने पूछा १२ वर्ष पूर्व आपने क्यों यही नाम न देकर इतनी सारी सेवा कराई? तो गुरु ने उसको एक हीरा दिया और उसका मूल्यांकन करने को भेजा—भाजी वाली ने दो 'सेर भाटा—

मिठाई वाली ने ५ रुपया; सर्राफ ने ५ हजार, जौहरी अपने धन को वेच कर, अपने को बेचकर भी न दे सका, ऐसा मूल्य आँका गया। इस पर गुरुदेव ने समझाया कि संस्कार एवं योग्यता के अनुसार मनुष्य ने हीरे की परख की। वही एक राम नाम रूपी हीरे को सभी जप रहे हैं जपने का तरीका शायद सबका एक ही हो किन्तु फल अलग-अलग मिलता है। इसका कारण है हृदय की परख और हृदय के भाव की न्यूनाधिक मात्रा। तुलसी ने भी वही नाम जपा था। उन्होंने जन्म-जन्म के अपने स्वरूप को बनाया अग्यों का भी जीवन बना दिया। वही हीरा भाजी वाली के लिये कोई कीमत का न था, जौहरी जीवन पर्यन्त की दरिद्रता मिटा लेता। इसी प्रकार राम नाम से कोई स्वरूप स्थित हो जाता है और कोई यों ही रह जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि हृदय के अन्तरतम उद्गारों का अन्तर है अन्दर बैटरी की नई सेल होगी तो अवश्य ही प्रकाश होगा और तेज भी। पुरानी होगी तो प्रकाश कम होगा। सेल दोनों में है पर शक्ति के कारण प्रकाश में तेज तथा धीमी रोशनी का अन्तर है।

अश्वारूढ़ो गजारूढ़ो सुषुप्तो जागृतोपिवा।
शुचिदेव सदाज्ञानी गुरू गीता जपेनतुः
तस्यदर्शन मात्रेण पुर्नजन्म न विद्यते।

घोड़े पर चढ़ा हुआ, जागता हुआ, सोता हुआ, जाता हुआ कैसी भी स्थिति में गुरु गीता का पाठ करने से फिर जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता। जैसी भी स्थित में हो वह सदैव पूजनीय है। वह निस्पृह होकर लोहे के पीपे में बैठता है। बैठने का भी कारण होता है आसक्ति से वह नहीं बैठता।

यदि है तो ऊपरी रहन-सहन में प्रकट हो जाता है कि य
धन है, तुम बताओ या न बताओ वैसे ही राम धन का खजान
हृदय के अन्दर है तो वह स्वतः ही प्रकट कर देता है कि इस
राम धन का खजाना है। भीतर का प्रकाश छिपाने से नह
छिपता ।

किसी भी बात में यदि निश्चय की कमी है तो वह क
नहीं फलता। पक्का निश्चय संकल्प को पूरा करके ही छोड़
है। सत्यवान की सावित्री संकल्प के आधार पर ही मरे हु
पति को ले आई। वह कितना ऊँचा आदर्श रख गई, कि
जैसा उनका संस्कार था वैसे ही संस्कारी के लिये वह आद
लाभकारी है। वह भी आप और हमारे जैसी ही हड्डी माँस
थी। कोई फर्क नहीं था केवल उसकी भावना एवं कर्म में मह
अन्तर था।

आप वर्तमान की बात समझिये, सोचिये और करिये। मे
गुरुदेव कहते थे, बेटा! तुम अपने को राम समझो, मुझे वशिष
तभी आत्मज्ञान प्राप्त करके जीवन बना सकोगे। यह मत सोच
की भूत में कोई राम-वशिष्ठ थे। तुम अभी वर्तमान की बा
सोचो, अपने को अर्जुन और मुझे श्री कृष्ण समझो तभी यथा
लाभ होगा। बहुत शैली प्रमाण पुस्तक अध्ययन करके क्य
करोगे। कर्म करो हम तो कर्म पर विश्वास करते हैं।

योगः कर्मसु कोशलम्।

एक ही बात ले लो, उसका विश्वास कर लो बात पूरी ह
जायगी। इस प्रकार के बहुत से प्रमाण हैं। राजा हरिश्चन्द्र
मीरा, अर्जुन सबको देखिये।

आप निश्चय तो कर लेते हैं किन्तु कर्म नहीं कर पाते
निश्चय को पूरा करने के लिये कर्म करिये। पुराना कर्म न ह

तो नया कर्म बनाइये। कर्म बड़ी प्रबल साधना है, जैसे संसार में धन। धन से अन्धा भी सुन्दर युवती से शादी कर लेता है, वैसे ही पुण्य संचित हो तो सब कुछ कर सकते हैं। वही पुण्य गुरु की आज्ञा पालन कराता है, वही पुण्य गुरु की दया का पात्र बनाता है, वही पुण्य निज स्वरूप में बैठाता है।

दृष्टान्त

दो भ्राता थे, दोनों महापापी थे। एक ने भूल से पुण्य कर्म कर लिया था अतः पुण्य के फलस्वरूप उसे स्वर्ग मिले एवं पाप के फलस्वरूप नरक। दूसरे को घोर नरक की यातना सहनी पड़ी। पहले वाले को पहले स्वर्ग सुख मिला। स्वर्ग को पाकर उसने अनेक पुण्य कृत किये किन्तु पाप का फल उसे भोगना पड़ा। कहने का तात्पर्य है कि पाप, पाप बढ़ा देता है पुण्य सुकृत करा लेता है किन्तु पुण्य से पाप नहीं मिटता, पाप का फल अलग और पुण्य का फल अलग है। बहुत से पापी इसी कारण सुखी दिखाई पड़ते हैं। धर्मात्मा लोग दुःखी दिखाई पड़ते हैं। कहीं दो भाई थे दोनों हैजे की बीमारी में मर गये। मरने पर एक ने कहा, पहले पुण्य भोगेंगे, एक ने कहा, पहले पाप। पाप दुःख का कारण होता है। जिसने पाप पहले माँगा था उसका पाप में पाप बढ़ता गया। दूसरे ने पहले पुण्य का फल माँगा वह दान-पुण्य करता रहा। उसका पुण्य से पुण्य बढ़ता रहा दुःख भोगने का समय ही नहीं आया।

सौ चोट सोनार की, एक चोट लोहार की।

इसी प्रकार जब पुण्य प्रबल हो जावेगा तो सतगुरु तत्काल मिल कर जीवन में ज्योति जगा देंगे। अतः जब आप प्रबल लगन करेंगे तभी सद्गुरु मिलेंगे। हम लोगों को भी आपकी

४

ढीली लगन देखकर मन फीका हो जाता है आँख बन्द करके यदि आप चलें तो क्या आपको सफलता मिलेगी ?

दृष्टान्त

किसी राजकुमार ने सुना समुद्र पार एक सोने की बुलबुल चिड़िया एक अमर फल का पेड़ तथा एक रुपहले जल का जलाशय है। जो वहाँ तक पहुँच जाय उसकी समस्त मनोकामना पूर्ण होती है। अनेकों राजा, महाराजा वीर बहादुर गये किन्तु वहाँ तक कोई न पहुँच सका। यह राजकुमार भी गया। मार्ग में एक सन्त रहते थे, पहले यह उन्हीं के आश्रम में पहुँचा तथा अपनी भावना को उनके समक्ष रखा। महात्मा जी ने मार्ग की भयानकता बताई किन्तु राजकुमार ने अपनी प्रबल जिज्ञासा उन वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रदर्शित किया। इस पर मुनि महाराज को दया आ गई। उन्होंने कहा, मार्ग में बहुत सी भयानक आवाज आयेगी किन्तु तुम मुख पीछे की ओर मत मोड़ना और आगे बढ़ते जाना अन्त में इन वस्तुओं का लोक है। राजकुमार बुद्धिमान था उसने तत्काल कान में रुई ठूंस ली और तेज घोड़ा दौड़ा दिया। मार्ग की बाधाओं को जरा भी न देखकर—अपने लक्ष्य पर पहुँच गया।

भगवान् ही सब कुछ हैं इस कहानी का पूर्ण सारांश यही है। यही राजकुमार, बुलबुल चिड़िया, तालाब, पेड़, साधु अब भी हैं। यह भूत की बात नहीं वर्तमान की है, समझने का फेर है। बहुत लेक्चर व्याख्यान सुनने से क्या हुआ जब कि जिस चीज में उलझे हैं वह सुलझा नहीं पाते। जो भूत में था वही वर्तमान में है। गुरु ज्ञान में भूत भविष्य आदि है ही नहीं। वर्तमान ही

वर्तमान है। जिसने इस ज्ञान को समझा है, उसने देखा और सुना दोनों है। गीता रामायण में जो कुछ है वह अभी के लिये ही है।

गुरु का ज्ञान निराला है। वह सदैव अपनी परावाणी से परलोक की बात करते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देवः॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

———

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः ।।
ध्यानं मूलं गुरु मूर्तिं पूजा मूलं गुरु पदम ।
मंत्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्ष मूलं गुरु कृपा ।।

भगवान को चर्म चक्षु से यदि देखा जाता तो ज्ञान चक्षु से देखा यह बात अष्टावक्र जी ने राजा जनक को अनुभव कराया था।

ज्ञान संस्कार की वस्तु है यह आवश्यक नहीं है कि उसको शिक्षित लोग ही समझें। जैसे गर्भ में बैठे परीक्षित जी तत्व ज्ञान को समझ सके और उनकी माँ नहीं समझ सकीं। गर्भ के शुकदेव जी समझ गये। उनकी माँ को न आ सका। संसार सेमर के फूल की तरह है, तोता बैठकर सेमर को सेता है। अन्त में बीया तक पक जाता है, फूल उड़ जाता है। तोता कर्म ठोकता है।

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल ।
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल ।।

संसार में मनुष्य अपना जीवन व्यर्थ में ही लगा देता है फल कुछ नहीं होता लक्ष्मण जी ने रात-दिन प्रभू की सेवा जान लगा कर की थी। किन्तु प्रभू ने अन्त में राम-नाम की महिमा का तत्व नहीं बताया। यह कहा सेवा अवश्य तुमने मेरी जीवन पर्यन्त की किन्तु कोई विशेष नहीं की। अपना ही

पुरुषार्थ, अपनी कमाई है तो कुछ मनुष्य कर भी सकता है। उसे सुख भी मिल सकता है। संसार की आशा करना धान की भूसी को कूटने के समान है। जन्म भर बेटे बच्चों की माया-ममता आशा करके बटोरते हैं, और जब वे हाथ-पैर के अपाहिज होते हैं तो व्रतादि करना शुरू करते हैं। ऐसी अवस्था में हरि भजन हो नहीं सकता। जन्म भर तो संसार की नौकरी की और मुर्दे घाट जाते समय संसार से लात मिली तो भगवान की भक्ति सूझी। ऐसे को कौन मानेगा—

सुख में सुमिरन न किया, दुख में किया याद।
कहें कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद॥

यदि प्रारम्भ से ही उनकी रुचि सेवा और भक्ति की ओर होती तो कितना सुख मिलता। ऐसे लोग दोनों तरफ से जाते हैं। ठीक ही कहा है—

संशय में दोनों गये, माया मिली न राम।

जीवन में हार नहीं मानना चाहिये। ज्ञान मार्ग में भी बुद्धि और मस्तिष्क की परम आवश्यकता है। किन्तु दिमाग और बुद्धि न होने से यह मतलब नहीं कि भक्ति ही न करे। प्रयत्न करते-करते धीरे-धीरे संस्कार बन जाता है और ज्ञान समझ में आने लगता है।

"अष्टावक्र जी को गर्भ से ही ज्ञान था।"
शुकदेव जी को गर्भ से ही ज्ञान था।
राजा परीक्षित गर्भ से ही धर्मात्मा ज्ञानी थे।
अभिमन्यु गर्भ से ही चक्र-व्यूह भेदन जानता था।
किन्तु यह लोग संस्कारी जीव थे।

किसी बात को करने से ही अनुभव में सत्यता आती है। कहा भी गया है कि "करता गुरु न करता चेला।" किसी बात का यदि हम संकल्प कर लें तो उसे पूरा करने में कोई कठिनता नहीं होती। सच्चा श्रवण वही है कि हम किसी बात को अनुभव द्वारा सुनें तब यथार्थता समझ में आती है।

श्री वसुदेव जी स्वयं भगवान् के पिता बने थे। नाम-रूप धाम उनके करतल में था किन्तु नारद जी से उन्होंने तत्व ज्ञान पूछा। साक्षात् भगवान ही उनके गृह में थे, वह उनको न समझ सके। फिर जब नारद जी ने तत्व को समझाया तब वह श्याम सुन्दर को पहचान सके। उसी गोकुल वृन्दावन में भी यशोदा, ग्वाले, नन्द बाबा उनको न पहचान सके। बार-बार उन्हें समझाया जाता था कि यह पारब्रह्म परमात्मा हैं, फिर भी वे लोग भूल जाते थे। जिस तत्व से परमात्मा को देखा जाता है उस तत्व से यथार्थ रूप से हम उनको जान सकते हैं। भगवान गुरु कहते थे पहले तुम समझो-बूझो तब कहो। किसी के कहने में न आओ। तुम स्वयं परखो। कोई भिखारी यदि एक किसी धातू का टुकड़ा ले आये और कहे कि यह बहुत बढ़िया सोना है तो उसे पहले कसौटी पर कसा जाता है तब लिया जाता है। किन्तु तुम्हारे पास कसौटी पर कसने का सामान तो हो। दर्शन तीन प्रकार के होते हैं। किसी के प्रति श्रद्धा है तो उसके वर्णन के अनुसार आत्म-विभोर हो (२) कल्याण द्वारा (३) चित्त द्वारा (साक्षात्) जो साक्षात् दर्शन में आता है, उसके साक्षात् दर्शन के पश्चात् प्रेम में अटूटता आ जाती है। भगवान को यदि इसी चर्म चक्षु से ही देखा जाता तो सभी देख लेते। भगवान श्रीराम को रास्ते चलते और श्री कृष्ण को रास्ते चलते लोग पहचान लेते। कहना कुछ और है और करना कुछ और है यानी कथनी से करनी अधिक कठिन है 'It is easier said

than done." जो पुण्यात्मा तथा संस्कारी थे उन्होंने चर्म-चक्षुओं से भगवान को देखा और समझा कि ये तो साक्षात् भगवान् ही हैं। किसी ने किसी की खूब बड़ाई की, उसके कहने पर हमने भी वही कह दिया और बर्ताव भी कर दिया यह उचित नहीं किन्तु यह प्रेम श्रद्धा मानना-जानना सच्चा है, जिसमें परिवर्तन आ जाता है। वह छूट जाने वाली वस्तु है, यह कच्चे रंग के समान है। महिमा, वैभव देखकर फिसलना दूसरी वस्तु है, भगवान को देखकर फिसलना दूसरी वस्तु है। भगवान को देखने पहचानने के नेत्र तो अलग ही हैं।

नैमिषारण्ड क्षेत्र में अट्ठासी हजार ऋषि-मुनि बैठे थे और सत्संग कर रहे थे उसमें श्री सूत जी से पूछा गया कि गुरु की क्या महिमा है। श्री सूत जी ने कहा—

यस्यदेवे परभिक्ति यर्था देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कचिता हार्था प्रकाशंते महात्मनः॥

सर्व प्रथम जिस तत्व से देखा जाता है, उससे देखा-छुआ जायेगा। बाद में इस स्थूल शरीर का अवलम्बन लिया जायगा। पहले हमारे पास वह ज्ञान होना चाहिये जिससे हम उनको समझ सकें।

ज्ञान शक्ति समारूढं तत्वमाला विभूषितं।
भुक्ति मुक्ति प्रदातारं तस्मैश्री गुरुवेनमः॥

हम यदि चाहें तो समय निकाल कर उस ईश्वर को जान सकते हैं। किन्तु समझने वाला होना चाहिये। यदि परमात्मा योगाभ्यास-तीर्थ-व्रत तपस्या से ही देखा जाता तो सभी देख लेते।

जानने का नाम ज्ञान और ज्ञान का नाम है जानना। ईश्वर की वस्तु समझ कर वस्तु है। जब अपनी समझ से समझ लेंगे, तभी वह सत्य तथा परमात्मा को समझ लेंगे। योग वशिष्ठ सुनते-सुनते जब ध्रुव प्रहलाद कहने लगे कि मैं ही परमात्मा हूँ, मैं ही शंख चक्र हूँ, मैं ही गरुए पर सवार होने वाला हूँ। तब किसी ने संशय किया यह ध्रुव प्रहलाद को क्या हो गया? योग वशिष्ठ सुनते-सुनते और भी नम्र तथा दास भाव होना चाहिये कि स्वयं ही ईश्वर बन जाय। तब श्री गुरु ने कहा ठीक है, समझते-समझते यह अपने स्वरूप को समझ गया व्यवहार भी वही दास भाव रहेगा। ज्ञान में भी खास ज्ञान होता है जो ईश्वर को दर्शाता है। विद्या तो सभी विद्या है किन्तु विषय अलग-अलग होता है। ज्योतिष तो विद्या है ही पर इसमें भी स्वयं की खासियत होती है, जैसे कोई ज्योतिष के द्वारा स्थान बता देते हैं तो कोई केवल इतना ही बता पाते हैं कि चोरी का माल कहाँ है? भगवान सतगुरु क्या नहीं कर सकते लेकिन जैसा अपनी पुरुषार्थ और लगन हो।

विचार करने की विवेक शक्ति होनी चाहिये। यह विचार शक्ति हो तो अपने आप प्रश्न और हल दोनों कर सकते हैं।

माँ कोई तत्व है लेकिन उसका प्रेम शाश्वत है। इस संसार में कोई माँ नहीं है, यहाँ न कोई मित्र न सखा किन्तु केवल सत्य प्रेम तत्व का ही उनमें भाव है। भगवान राम ने भरत जी को ही भातृ प्रेम में वर्णन किया है। जहाँ भातृ प्रेम के वर्णन में तुलना दी है वहाँ भरत का प्रेम ही तुलनीय होता है। जिसमें तत्व का प्रेम बदल नहीं सकता। हरि को अचल प्रेम का नजराना करना चाहिये—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

जय जय सत गुरु दीन दयाला आपको लाखों प्रणाम।

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

———

सीता राम, सीता राम, सीता राम, सीता राम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव;
त्वमेव सर्वं मम देव देवः ।।

श्री आनन्दमय भगवान की जै !

गुरु ही विधाता, गुरु ही दाता ।
आत्म बल सम कोई नहीं साथा ।।

बल केवल आत्म बल दुर्लभ है जग माहीं
जन्म जन्म के पुण्य से गुरु दया से पाहीं ।

आत्म बल के सामने दूसरा कोई बल नहीं है । यह आ बल है, कभी इसका नाश नहीं होता । यह निज स्वरूप का है, । यह बल परम बल है तथा अति दुर्लभ है क्योंकि यह कि धनी, पंडित, मन्दिर, महन्त, सन्त से नहीं प्राप्त होती । जन्म जन्म से संचित पुण्यों के द्वारा जब श्री सद्गुरु मिलते हैं उन्हीं की दया से ही आत्म-बल की प्राप्ति होती है किसी कार्य को करने के लिये विचार होना चाहिये । जितने भी मह पुरुषों ने अनहोनी असम्भव कार्य एवं जो कर्म चकित कर वाले हैं, किया है जैसे सूर, मीरा, तुलसी, रैदास मोरध्व हरिश्चन्द्र इन सब में अगाध आत्म बल था जिस शक्ति ने इ अनुपम बना दिया । यह सब उन्होंने अपने आत्म बल से किया ।

पुरुषार्थ करें तो अनमोल वस्तु के लिये करें—

अतिशय रगड़ करै जो कोई।
अनल प्रगट चन्दन से होई॥

वह रोटी भात कपड़े के लिये न करे। यह कर्म तो पूर्व-कर्मोद्भव प्रारब्धानुसार मिलेंगे ही। यह तन मिला है तो क्या दाल भात न मिलेगा। अरे! जो मनुष्य के लिये भोजन है वह उसे मिलेगा ही। जो जानवर के लिये भोजन है वह उसे मिलेगा। भगवान का सदाव्रत तो चलता ही रहता है वहाँ से तो भोजन अवश्य ही मिलेगा। सच्चिदानन्द होकर फिर वही दाल भात की फिक्र कितने शर्म की बात है।

तुम्हारे स्थूल शरीर रूपी राख के भीतर ही तुम्हारे निज-स्वरूप या आत्मबल रूपी अग्नि दबी पड़ी है। उस राख को हटाने की विधि उचित गुरु से जानकर तुम उसे शीघ्र ही क्यों नहीं प्राप्त कर अमर हो जाते। व्यर्थ की चीजों के लिये प्रयत्न करते हो।

गुरुदेव भगवान की जै!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम् देव देवः॥

हरे रामा हरे रामा रामा रामा हरे हरे!

———

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

राधे श्याम राधे श्याम, राधे श्याम राधे श्याम
सीताराम सीताराम, सीताराम सीताराम ।

प्रभू ने जो किया अच्छा ही किया। जो प्रभू करते अच्छा ही करते हैं। भक्ति सागर में है—

प्रभू चाहे सो करे ताको टोके कौन
देखि देखि अचरज भयो चरणदास गहे मौन

चरणदास जैसे शिष्य अपने सद्गुरु के आचरण देख मौन रह जाते थे ऐसी उनकी लीला अपार है।

(१) इच्छित करनी (२) अनिच्छित करनी।

जैसे एक पेड़ बोया इच्छा किया है बड़ा होगा और फल लगेगा फिर परिवार वालों को देंगे। इस कर्म को तो आप जानते ही हैं कि पेड़ बोया है तो फल लगेगा ही। दूसरा है अनिच्छित कर्म। जैसे बिना जाने ही राधे श्याम की मूर्ति खो गई। आ... त्यागना पड़ा। उसको खोजना आदि तरह-तरह के कर्म करने... अनिच्छित कर्म है। यह घटना अनदेखी अचानक आ ... यदि हमको पता होता कि यह मूर्ति जायगी और फिर हम खोजेंगे तो हमारी पहले से ही एक बनी बनाई योजना हो...

ौर हम उसी बने बनाये के अनुसार प्रयत्न करते जाते। ाप इतना भी नहीं जानते कि भविष्य में क्या होगा? और हम ना जानते हैं कि भविष्य में कुछ होगा।

एक कोई भगवान का प्रिय निष्ठा नियम श्रद्धा वाला भक्त ा। उसके घर में एक गौ एक लड़का और एक माँ थी। भगवान पूजा करते-करते उसको बहुत दिन हो गया था। एक दिन सने मन में सोचा कि हमने सुना था कि भक्ति करने से लोक लोक बनता है और सब कष्टों का निवारण हो जाता है। के तो कोई लाभ नहीं हुआ। ऐसा सोच कर उसका हृदय छ उद्विग्न हो उठा। इच्छा जहाँ किया, लाभ जहाँ देखा तहाँ तः ही अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। हमें तो केवल कर्तव्य र्म से ही मतलब है। ईश्वर की सेवा व्यापार बाजी नहीं है। तो निःस्वार्थ प्रेम से सेवा करना कर्तव्य है। गीता में ा है—

थैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
र्व कर्म फल त्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥१२-११॥

अर्थात् 'यदि इसको करने के लिये असमर्थ है तो जीते मन वाला प्राप्त योग के शरण होता हुआ सब कर्मों के फल मेरे लिये त्याग कर। इसलिये जो कुछ कर्म मनुष्य करता उसे भगवान को अर्पण करके करे। अर्पण करने से शुभाशुभ रूप कर्म बन्धन से जीव मुक्त होकर भगवान को प्राप्त ता है।

पति तथा सास ससुर की सेवा करना वधू का कर्तव्य है, में हानि लाभ नहीं देखा जाता। जब तक तन में प्राण ह की सेवा करना मानव का कर्तव्य है। लोभ के वश होकर

उस भक्त ने सोचा हम अब पूजा पाठ छोड़ देंगे। कुछ दि
पश्चात् उसकी गाय मर गई। थोड़े दिन में उसके घर में।
महात्मा आये उस भक्त ने उनको अपने हृदय की बात बता
महात्मा जी ने बहुत समझाया लेकिन उसको शान्ति न
मिली। एक दिन वह कहीं से काम करके आया देखा कि उस
माँ मरी पड़ी है। उस पर बज्रपात सा हुआ। वह पागल
होकर अचेत हो गया। कुछ दिनों बाद वहाँ के उदास वा
वरण से उसने घर छोड़ दिया, बाहर निकल गया। एक जं
में पहुँचा एक कुआँ मिला। सोचा पानी पी कर प्यास शा
करूँ। कुयें में झाँका तो देखा एक सोनार, एक साँप, एक
उसमें हैं। उन लोगों ने कहा हमें निकाल लो। हम समय
काम देंगे। उसने लाभ का विचार कर उन्हें बाहर निक
दिया। साँप ने कहा जब जरूरत होगी याद करना हम आ
तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। सोनार ने कहा हमें मुसीबत में
करना मैं तुम्हारी आवश्यकता पूरी कर दूँगा। सिंह ने
अंगूठी दिया और कहा—यह अंगूठी लो जब तुम भूखे हो
बेच कर पेट पोषण करना। यह अंगूठी राजकुमार की थी ज
में शिकार खेलते समय गिर गई थी शेर ने उसे उठा कर
लिया था वही इसको दे दिया था। एक दिन उसे आवश्य
पड़ी वह शहर में वही अंगूठी बेचने गया। दैववश उसी सो
के यहाँ गया जिसको उसने कुयें से निकाला था। सुना
अंगूठी छिपा ली और राजा के यहाँ खबर कर दी। राजा
आदमी उसे पकड़ ले गये। वहाँ उसका बयान हुआ। पथि
सत्यासत्य का निरूपण कर दिया पर किसी ने विश्वास
किया और उसे फांसी की सजा दे दिया। पथिक बड़ा दु
हुआ। उसने सोचा दो जनों की परीक्षा तो हो गई कैसा
पहुँचा? अब सर्प की याद करूँ। सर्प का स्मरण करते ही

आ गया और उसके इकलौते पुत्र राजकुमार को काट लिया सारे राज्य में हल्ला मच गया इधर सर्प ने पथिक से आकर कहा देखो मैं राजकुमार के पुत्र को काट कर आया हूँ तुम कह दो हम झाड़ फूँक जानते हैं तुम ऐसी ही फूंक देना मैं अपना विष खींच लूंगा। वह बच जायेगा। इस प्रकार तुम भी बच जाओगे। ऐसा कह कर वह गायब हो गया। पथिक ने कहा जल्लादों से—मैं मरूँगा तो है ही मुझे मरने का डर नहीं किन्तु मैं झाड़ फूंक जानता हूँ तुम्हारे राजकुमार के पुत्र को बचा कर संसार से जाऊँ। ऐसा कह कर वह राजमहल में गया और फूंका राजकुमार जागृत हो गया। आनन्द से राजा लोट पोट होकर उसके चरणों पर गिर गया और कहा अवश्य ही यह भक्त सत्य का अनुगामी है। इसको झूठा दोष लगाया गया है। राजा ने क्षमा माँगी और पूरा राज पाट देने को कहा। पथिक ने कहा—मैं सब भोग आया हूँ अब मुझे कुछ भी न चाहिये। भक्त सोचने लगा मैं सौचता था मेरा लोक-परलोक कुछ नहीं बना किन्तु ऐसा नहीं है। ईश्वर अवश्य एक दिन कर्म का फल देकर भक्त को ऊँचा से ऊँचा उठाते हैं। राजा भक्त का शिष्य बन गया और उस भक्त की कीर्ति सारे राज्य में फैल गई।

अनहोनी हरि कर सके, होनी देय मिटाय।
चरणदास करूँ भक्ति ही, आपा देय उठाय॥

भक्ति हो तो ऐसी हो कि अभिमान जरा सा न रहे। भक्ति ऐसी दृढ़ और विवेकमय हो कि समयानुकूल प्रत्येक परिस्थिति को सह सके तथा ईंट पत्थर जो कुछ ऊपर पड़े भक्ति कर्म से न डिगे। हम लोगों की जो भक्ति-साधना और निष्ठा है उसमें हम

लोग लाभ पहले खोजते हैं जिससे अशान्ति प्राप्त होती है। फल के लिये क्यों घबड़ाना ? यदि पेड़ लगाया है तो उसमें खाद पानी डाल कर सींचते रहो समय पर फल निकल ही आयेगा जरा सा उसमें लापरवाही होगी तो फल निकलने की अवधि अधिक बढ़ जायगी यानी समय और लगेगा।

साधना पूजा प्रार्थना आदि का निश्चय ही फल मिलने वाला है। लेकिन विलम्ब देखकर घबड़ा जाते हैं और बीच में छोड़ देते हैं यही विलम्ब का कारण है। कभी कर्तव्य करना, कभी न करना, झुँझलाना यही फल प्राप्त होने में विघ्न उत्पन्न करता है। हम दृढ़ता मे करते रहेंगे तो अवश्य ही उसका फल मिलेगा। सत्य पर डटे रहना चाहिये हार नहीं खाना चाहिए। कर्म जो जैसा करते हैं उनका वैसा खाता लिख जाता है। सच्चे भाव सच्ची लगन से जो कर्म करता है उसका अनोखा फल मिलता है। देर सवेर की बात हम नहीं करते आखिर फल मिलेगा तो है ही। जो सच्चे हृदय एवं लगन से गंगा जी का स्नान करने जाता है उसको पग-पग पर सौ अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है। और जो केवल मनोरंजन के लिए जाते हैं उनको वैसा ही फल प्राप्त होता है। गुरु गीता में कहा है—

ज्ञान शक्ति समारुढं तत्वमाला विभूषितं।
भुक्ति मुक्ति प्रदातारं तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

मेरे भगवान भुक्ति मुक्ति दोनों के देने वाले हैं सभी को घुमा फिरा कर फल देते हैं। क्यों न घुमाए! वह यदि चाहता है तो किसको किस दिन कहाँ नहीं पहुँचाता ? यह वही जानता है। भगवान् अहित नहीं हित के लिए हमसे कर्म कराते हैं।

भगवान ने कहा—मैं राज्य माँगने वाले को राज्य, कीर्ति माँगने वाले को कीर्ति देता हूँ किन्तु शीघ्र ही अपनी भक्ति नहीं

देता क्योंकि मेरी भक्ति देने से भक्त मेरे आश्रित हो जाता है और मुझे स्वत: को उसे देना पड़ता है। तथा उसके पूर्ण योग क्षेत्र का वहन भी करना पड़ता है। ईंटों का बना हुआ मन्दिर ही मन्दिर नहीं है हमारा हृदय भी एक मन्दिर है जिसमें परम पुरुष विराजता है। कर्म के अभाव में मानव की परीक्षा भी नहीं हो पाती। समय पर ही मनुष्य की पहचान होती है।

हमें प्रसन्नता यही है कि इस धर्म के लिए हम जैसा चाहें यहाँ के लिए कर सकते हैं। किन्तु इन्हें अग्रसर कराने वाला कोई होना चाहिए। आप लोग खूब साहस रखिये और अन्यों को बढ़ाते रहियेगा। संसार का व्यवहार व्याह-शादी आदि तो कर ही रहे हो, होता ही रहेगा—होता ही है। इसे हम कर्तव्य कर्म या कर्म की गणना में नहीं लेते क्योंकि जन्म मरण बाल-बच्चे, खाना-पीना तो पशु भी करते हैं। नर तन का तो उससे अलग ही धर्म है। आप खूब कर्म करते रहिये पर शुद्ध वासना रहित। सोने को जितना तपाओ उतना ही खरा होगा। मेंहदी को जितना ही पीसो उतना ही लाली देगी। आगे-पीछे की बात छोड़कर निश्चय रूप से निर्भय होकर कर्म करो। फल चाहो न चाहो वह समय पर मिल ही जायगा। बात से कुछ नहीं होता कर्म से होता है।

सत्सङ्ग करिये और जो कहा जाता है उसे ही करिये। ज्ञान और कर्म दोनों ही आवश्यक है। चिड़िया के उड़ने के लिए पंख चाहिए ही। यानी भव से पार होने के लिए दोनों ही चाहिए। समझते-समझते समझ में आ ही जाता है।

प्रश्न—भगवान किस बात से रीझते हैं ?

बोलो गुरुदेव भगवान की जै !

रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव।

परम तत्व जाने बिना, मन का मरम न जाय।
राम रूप एक ही में, रहूँ सदा समाय॥

नर सहस्र मंह सुनहु पुरारी,
कोऊ एक होई धर्म व्रतधारी।
धर्म शील कोटिक महं कोई,
विषय विमुख विरागरत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई,
सम्यक ज्ञान सुकृत कोऊ लहई।
ज्ञान वंत कोटिक मँह कोई,
जीवन मुक्त सुकृत जग होई।
तिन्ह सहस्र महं सब सुख खानी,
दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी।
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी,
जीवन मुक्त ब्रह्म पर आनी।
सब ते को दुर्लभ सुरराया,
राम भगति रत गत मद माया।
सो हरि भगति काग किमिपाई,
विश्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।

भक्ति इन सब वस्तुओं से निराली वस्तु है। कागभुसुण्डि जी को प्रभू ने सब वस्तु दिया तब कागभुसुण्डि जी बोले, आपने भक्ति तो दी ही नहीं। उसी रामायण में कहा है—

भक्ति स्वतंत्र सकल गुण खानी।
बिन सत्संग न पावे प्राणी॥

एक जगह कहा है—

मम सेवक मम प्रियतम होई।
मम अनुशासन माने जोई॥

सेवा आज्ञा पालन कोई कम वस्तु नहीं है—

प्रेम प्रीति के बस भगवाना।
वेद शास्त्र करें बखाना॥
दुर्लभ प्रेम हाथ न आवे।
हरी कृपा करे देइ तो आवे॥
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

भक्ति भक्ति में अवश्य अन्तर है। ऐसी बात नहीं है कि इन वस्तुओं की महत्ता नहीं है किन्तु हमारे आप जैसों की प्रेम भक्ति आज्ञा पालन से ईश्वर नहीं रीझते जैसे स्त्रियाँ सभी स्त्रियाँ और पुरुष सभी पुरुष होते हैं किन्तु कोई-कोई कैसे क्रूर और कुटिल होते हैं जिनका हृदय पत्थर जैसा होता है। जैसे कोई कोई घर फोड़नी होती हैं। वह माँ बेटे में झगड़ा करा देती हैं। वह गुण हममें आप में नहीं हो सकता।

चाहें तब भी नहीं सीख सकते। इसी प्रकार भक्ति भक्ति में अन्तर होता है जैसे एक देहाती ने अपनी बहिन का विवाह देहात में कर दिया। कुछ दिन पश्चात् एक दिन बहिन से मिलने गया। मिलने पर कुशल समाचार पूछा। बहिन को इतने दिन पश्चात् भाई को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कुआँ का मेंढक कुएँ को ही अपना जगत समझता है। और वह अपनी सब वस्तुओं को भाई को दिखाने लगी और कहने लगी यह 'तोहार' है और यह "तोहार" है। भाई ने सोचा वास्तव में यह सब मेरा ही है। घर में ऐसा सोचकर उसे रात में नींद नहीं आई कि प्रातः काल हो और घर से सामान ढुआये। प्रातः होते ही वह सब कुछ ले जाने लगा। दीदी ने भाई की यह चाल देख कर कहा—काहे रे ! यह क्या करत है ? भाई ने कहा, तुम कल कहे नहीं रही कि सब तोहार है। उसने कहा, कहे के और करे के और बात है। तब भाई समझा।

जिस प्रेम के वश में आप कहते हैं वह प्रेम और है।

हरी से प्रेम लगाइ के, सबसे देइ उठाय।
रहे सदा एक राम ही, और सभी मिट जाय ॥

प्रेम प्रीति के बस भगवाना—

मिट जाने से मतलब यह नहीं कि सब गंगा में चले जांय। सब कुछ होते हुए भी न होते हुए के बराबर हो। सत्य और ठीक है तो सब की बात मान ले नहीं तो अनासक्त होकर किसी की न माने। पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकार की होती हैं।

अनुसूया जी सीता जी से कहती हैं—

(१) उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥

उत्तम के लिए सपने में भी पर पुरुष नहीं होता है।

(२) मध्यम पर पति देखइ कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥

मध्यम पर पुरुष को पुत्र भाई पिता के सदृश मानती हैं।

(३) धर्म विचार समुझि कुल रहई।
सो निक्रिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥

निकृष्ट धर्म विचार कर पर पुरुष की ओर दृष्टि नहीं उठाती।

(४) बिनु अवसर भय ते रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥

अधम वे हैं जो मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती हैं।

विशुद्ध सच्चा प्रेम—कहने का तात्पर्य यह है कि जो करते हैं उसके लिये मर जायें। जैसे गोपियों ने नरक की भी न सोचकर अपना चरणामृत प्रभु को दे दिया ताकि प्रभु का सर दर्द ठीक हो जाय। स्वार्थ रहित प्रेम हो। जो चीज हो उसमें सत्यता हो।

अब भक्ति से लीजिये—

जैसे भीलनी ने किया, मीरा जी ने किया सबने किया, फिर इनमें क्या विशेषता थी? आप हम सभी करते हैं।

भक्ति कराने के लिये कोई आज्ञा नहीं चल सकती। जैसे नशेबाज नशे की वस्तु खाने में मस्त रहते हैं वैसे ही यह आज्ञा पालने वाले, भक्ति करने वाले उसके करने में मस्त रहते

हैं। उन्हें अपने घर-बार मान कीर्ति की कोई परवाह ध्यान नहीं रहता।

जब लगि नाता जगत का, तब लगि भक्ति न होय।
नाता तोरै हरि भजै, भक्त कहावै सोय॥

भगवान ने भक्ति तत्व बीच मझधार वालों को नहीं दिया है। किसी को यदि निज स्वरूप को दिया या उसका नाम अमर किया तो सरलता से नहीं। कहने वाले बहुत होते हैं किन्तु करने वाले कम। वह चीज कौन है जो किनारे पहुँचाती है? उत्तर है भक्ति। किसी राजा ने पूछा कि भक्त के लिये भगवान क्यों आते हैं किसी दूसरे को भी भेज सकते हैं?

गुरु समस्त जिज्ञासा को कर्म के द्वारा करके दिखा देते हैं। बड़ा भाग्य होगा जो यह वस्तु हृदय में बैठेगी। "भाव के भूखे हैं भगवान"।

यही भक्ति निष्ठा सभी कर रहे हैं यदि वही होता तो सभी एक ही स्थान में पहुँच जाते। चोला वैराग्य—प्रेम काम नहीं देता उससे लाभ तो होता हैं किन्तु जो होना चाहिये वह नहीं होता। उस प्रेम के अन्दर सत्यता होनी चाहिये। यदि सत्यता होगी तो कदम कभी पीछे न हटेगा। अपने इष्ट के लिये प्रबल प्रेम होना चाहिये।

श्री गुरुदेव भगवान की जै!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवम—

चैतन्य चोला ही या चैतन्य पुरुष ही त्रेता, द्वापर, कलियुग, सतयुग होता है। कोई युग विशेष ही त्रेता, द्वापर, कलियुग, सतयुग नहीं होता। जिन प्रवृत्तियों के लोगों का बाहुल्य अधिक होता है उन्हीं वर्ग विशेष के नाम से युग हो जाता है। जिधर जिस प्रकृति के लोगों का झुकाव होता है उसी प्रकृति के लोगों का नाम पड़ जाता है। सतयुग कलियुग की कोई अलग छाप नहीं होती। युग जड़ नहीं चैतन्य चोले पर होता है।

ज्ञानियों के लिये एक के अलावा दूसरा कोई स्वरूप नहीं है एकोऽहं द्वितीयो नास्ति। पतिव्रता के लिये अन्य पुरुष है ही नहीं। हनुमान जी से प्रभू ने पूछा—आप कौन हैं ? उन्होंने कहा यों तो शरीर से मैं आपका सेवक हूँ पर यों कहिये जो आप हैं सो ही मैं हूँ। ज्ञानियों के लिये कुछ बन्धन नहीं है। एक घसियारा घास काट रहा था, काटते-काटते कुएँ में गिर पड़ा। कुआँ ऊपर घास से ढका हुआ था और ऊपर से धरातल जैसा प्रतीत हो रहा था। घसियारा नीचे से चिल्लाने लगा—संसार डूबा जा रहा है। लोगों ने कहा, कैसे डूब रहा है मूर्ख ? उसने कहा, निकालो तो बतायें। लोगों ने निकाला और पूछा, बताओ कैसे संसार डूब रहा था। घसियारा ने कहा, आग

जलाओ तब बतायें। जब वह गर्म हो लिया तब कहा, अब जिन्दा हो गया। लोगों ने कहा कैसे ? उसने कहा, मैं मर रहा था तो मेरे लिये सारा संसार मर रहा था। मैं जिन्दा हुआ तो सारा संसार जी उठा। लोगों ने कहा ठीक है।

भक्तों के लिये चारों तरफ भगवान हैं। गरीब के लिये सदैव दुःख ही है। उल्लू के लिये रात्रि ही दिन होता है। यानी दिन उनके लिये रात्रि के समान है। जो जैसा होता है उसके लिये समय भी वैसा होता है। मनुष्य के प्रवृति और स्वभाव के अनुसार उसके लिये वस्तु का अभाव या उसका अस्तित्व होता है। चोर को दुनिया चोर और साहू को दुनिया साहू दिखलाती है। यदि आप बाहर से प्रसन्न होंगे तो कटु शब्द नहीं निकलेगा, अन्दर से प्रसन्नता होगी तो भी कटु शब्द नहीं निकलेगा। प्रत्येक वस्तु हमारे ही अन्दर है। हमारे भाव ही सब कुछ हैं। किसी ने कहा है—

Face is the index of the heart.

दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय गौर।
आगे की गति और है, विमुख भये कछु और ॥

गुरु बाहर खड़े हैं यदि अन्दर भाव नहीं है तो हम गाली दे रहे हैं। यदि बाहर कोई वस्तु पड़ी है उसके प्रति भाव नहीं तो उस वस्तु का होना न होना बेकार है।

दो महापुरुष बद्रीनाथ दर्शन करने जा रहे हैं। एक व्यक्ति मार्ग में मिला उसने कहा, आप कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने कहा, हम बद्रीनाथ जायेंगे। पूछने वाले ने उत्तर दिया कि वह तो हमीं ने बनाया है। महापुरुषों ने कहा, तुमने कहाँ से बनाया ? चर्चा होते हुए भगवान श्री कृष्ण की चर्चा हुई। उन्होंने कहा, मैं तो

स्वयं श्री कृष्ण का पुत्र हूँ। प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि श्री कृष्ण मेरे पुत्र हैं। अन्त में वार्तालाप करते-करते महापुरुष समझ गये कि ये कोई तत्व वेत्ता ज्ञानी पुरुष हैं और अन्त में कहा—मेरी तीर्थ यात्रा का संकल्प पूर्ण हो गया।

छोटे प्रायमरी बच्चों को जिन्हें अंग्रेजी की पुस्तक King Reader भी पढ़ना नहीं आता यदि उन्हें High School की किताब पढ़ने को दें तो कहाँ से वे पढ़ेंगे ?

आप सब यदि प्रथम श्रेणी की भक्ति ही नहीं समझते तो ब्रह्म ज्ञान को कहाँ से समझेंगे ?

प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है कि ईश्वर का भजन पूजन करे। तब बच्चों का लालन-पालन करना, अन्य गृहस्थ कार्यों को करे। एक माँ अभी हमें मिली थी, कहती थी भक्ति करते तो हैं किन्तु इससे फायदा नहीं है। भक्ति को तो व्यापार समझ रक्खा है फिर बताइये ईश्वर से क्या प्रेम करेंगे। जैसे स्त्रियां छिपे लाभ को दृष्टि में रख कर ही पति की भक्ति सेवा करती हैं और फल भी पाती हैं कम से कम उतनी ही प्रकार की भक्ति प्रभु के लिये करिये तो देखिये लाभ होता है कि नहीं किन्तु आपसे उतना भी सचमुच नहीं होता।

मानव स्वयं बन्धन में निज को बाँध लेता है। वह कहाँ अन्य रस्सी और खूँटे से बँधा है ? मन की भक्ति से ही मुक्ति और मन के ही फँसाने से बन्धन।

मैं भँवरा तोहि वरजिया,
बन बन वास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से,
तड़पि तड़पि जिय देय ॥

आप कहेंगे माया एवं मोह की डोरी से हम बँधे हैं। यदि मानव वास्तव में बँधा होता तो कभी नहीं खुल सकता किन्तु अज्ञान के कारण मानव बन्धन मुक्त नहीं हो पाते।

मोर तोर की जेवरी, बंटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाको नाम आधार॥

अपने ही ज्ञान भाव से मनुष्य को आनन्द मिलता है। जब तक आपके भीतर सहन शक्ति, त्याग न होगा तब तक बाहर से हमारे थपथपाने से क्या होगा? अन्दर ही सब कुछ है। बाहर कोई चीज नहीं है। आपके ही अन्दर है। मीरा ने विश्वास के आधार पर ही विष पी लिया। हमारे बनाये हुये बन्धन को हम ही काट सकते हैं। विष से मानव मर जाता है किन्तु मीरा अमर हो गई। जैसी सत्यता एवं समझ से हम जिस भाव को निकालते हैं वैसे ही फल मिलता है।

गुरु बाल ब्रह्मचारी परम त्यागी हो किन्तु हम वैसे न हों तो क्या लाभ? पाप पुण्य बुरा भला सब हमारे ही अन्दर है। हमारे भाव का ही फल हमको मिलेगा अन्य वस्तु का नहीं।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है ताके हिरदय आप॥

आकल्प जन्मनः कोट्यां यज्ञः व्रत तपः क्रिया।
तत्सर्वं सफलं देवि गुरु सन्तोष मात्रतः॥

गुरु भववान की आज्ञा पालन ही उनके रिझाने का साधन है। आज्ञा पालन है बड़ा कठिन क्योंकि इसमें अपनी इच्छा एवं रुचि की तिलांजलि देनी पड़ती है। जैसे—

सेवक सुख चह मान भिखारी,
व्यसनी धनु सुभगति व्यभिचारी ।
लोभी जसु चह चार गुमानी,
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥

राजा जनक अष्टावक्र जी को दक्षिणा में जवाहरात देने लगे तब अष्टावक्र जी ने कहा--यह क्या देते हो ? जो मैं कहूँ सो दो। राजा ने पूछा, वह क्या वस्तु है ? इस पर अष्ठावक्र जी ने कहा, मन को चढ़ा दो। जनक जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर पश्चात् एक ब्राह्मण आया एवं कन्या के विवाह के लिए उसने सम्पति चाही। राजा स्वभावानुसार आज्ञा देने ही लगे थे तो अष्टावक्र जी ने कहा, तुम किस अधिकार से आज्ञा देते हो ? मन तो मेरा है। इस पर राजा ने क्षमा माँगी। जब तक आत्मा प्रकट न हो तब तक अध्ययन की आवश्यकता है। सिद्ध जन कर्म इसलिये करते हैं कि वह उनका भूषण है और अन्यों के आदर्श के लिये। साधक के लिये भी इसीलिये वैसा आवश्यक है क्योंकि आत्म पद पर पहुँचना है। यह उसका कर्त्तव्य है। प्रत्येक ,दृष्टि से पुण्य करना चाहिये। एक बार खेती कर लेने से काम नहीं चलता। बार-बार बीज बोना पड़ता है और खेती करनी पड़ती है।

आगे का प्रश्न—मनुष्य कितने स्वभाव के होते हैं ?

ब्रह्मा नन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति,
द्वन्दातीतं गगन सदृश्यं तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलम चलं सर्वदा साक्षीभूतं,
भावातीसं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवम्।

कहावत है—जैसे वंशी में बिलकुल पोला होता है और इसके छः छेदों द्वारा सुन्दर स्वर मिठास से भरा निकलता है। इसी प्रकार मानव के विकारों से रहित खाली परम पवित्र हृदय से हरिनाम लिया जाय तो उसमें विशेष आनन्द, आकर्षण एवं माधुर्य भरा हुआ होगा। ऐसे खाली हृदय केवल प्रभु का प्यार भरा हो तब उसके लेने से ही उन्नति होती है। मैले कुचैले हृदय से नहीं। भोज पत्र का कागज जैसे एक डण्डे में लपेटी हुइ पट्टी की तरह लपेटा रहता है किन्तु अन्दर तक केवल भोज पत्र ही पत्र रहता है। इसी प्रकार बाहर से भीतर तक हृदय केवल नाम के प्रेम से ही भरा होना चाहिये।

प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक॥

प्राकृतिक और स्वभाविक वस्तु दूसरी ही होती है। बनावटी वस्तु दूसरी ही है किन्तु यदि प्राकृतिक न हो तो सत्संग एवं अभ्यासों के द्वारा उसको बनाना चाहिये। अभ्यास के द्वारा बनावटी भी स्वभाविक हो जाता है। यह तो मानी बात है सबके स्वभाव अलग-अलग हो जाते हैं। कोई क्रोधी, कोई वीर, कोई कमजोर। इसकी बात हम नहीं करते कुछ ऐसे होते हैं जो ठग होते हैं। उनकी चाल ढाल की बात दूसरी ही होती है।

चोर-चोर में अन्तर होता है। एक चोर साधारण होते हैं और एक जन्म से ही चोर उत्पन्न होते हैं।

एक धूर्त की कथा—

एक लड़का था, उसका दिमाग बहुत तेज था। बड़ा चालाक और ठग प्रकृति का था। उसकी माँ उसे बड़ी ही कठिनता से

संभाल पाती थी। जब वह बड़ा हो गया तो उसकी माँ बड़े ही दुःख में रहती थी और सोचती थी एक ही पुत्र है न तो इसे मार ही सकती हूँ और न जिला ही सकती हूँ। विनीता के सौ पुत्र थे तो क्या हुआ था ? जो कुटिल प्रकृति के होते हैं वो निर्भयी प्रकृति के बने ही होते हैं। जैसे चूहे का स्वभाव ही होता है कपड़ा काटने का। अच्छा तो वह लड़का कहीं परदेश जाने लगा। रास्ते भर सबको ठग कर अपना काम चलाया। एक स्थान पर उतरा और लोगों से कुछ पुछताछ कर एक बुढ़िया के यहाँ पहुँचा जिसके पास सम्पत्ति काफी थी। उसके सन्तान भी सब परलोक जा चुके थे। उसने पहले ही सब लोगों से उसकी पूरी हुलिया पूछ लिया था। वह झट से बुढ़िया के पास गया और कहा—माँ; माँ मुझे भूख लगी है। वह विचारी बुढ़िया मोह में अन्धी हो रही थी। उसे खूब प्यार करने लगी। एक दिन कहा, तुम तो हमारे छोटे पुत्र की तरह हो। उस लड़के ने कहा—माँ क्या कहती हो ? मैं तो तुम्हारा ही पुत्र हूँ। घूमने गया था अब आ गया हूँ। तुम तो मेरी अच्छी माँ हो। धीरे-धीरे अपनी कुशाग्र बुद्धि से उसने सारी जायदाद ले लिया।

स्वाभाविक शठता का एक अलग ही रूप होता है जो कभी नहीं बदलता। बहुत ही कोई पुण्य हुआ तब तो स्वभाव बदलता है। गुरु गीता में भी कहा है :—

अभक्ते वंचके धूर्ते पाखंडे नास्तिके शठे।
मनसापि न वक्तव्यं गुरु गीता कदाचनः ॥

जो बने बनाये कुटिल होते हैं वो अपनी कुटिलता को कभी नहीं त्यागते। ऐसे लोग न अपने ही होते हैं और न किसी अन्य के। केवल टेढ़ी चाल के ही होते हैं। ये जिधर जाते हैं उधर पक्के रहते हैं, अडिग रहते हैं।

कुछ ऐसे भी होते हैं जो कुटिल तो होते हैं किन्तु समझाये जाने से समझ भी जाते हैं। भगवत् मार्ग में ही जो सच्चे और पक्के होते हैं उनको कोई पथ से डिगा नहीं सकता। किन्तु वैसे ही शक्तिशाली और दैवी गुण वाला उन दुष्टों को भी बदल सकता है किन्तु सच्चे भगवत मार्ग वाले को कोई नहीं बदल सकता। हमने घर परिवार को त्यागा तो क्या त्यागा ! त्यागना तो स्वभाव का ही त्यागना हुआ।

एक बूढ़ा था, वह स्वभाव का चोर था। लड़के भी सब बड़े-बड़े थे, अच्छे-अच्छे पद पर पहुँच गये थे किन्तु उस बूढ़े ने अपनी चोरी की आदत नहीं छोड़ी थी। उसका स्वभाव ही चोरी का बन गया था। कुछ नहीं मिलता था तो वह बच्चों के जूते ही छिपा कर रख देता था।

कहने का आशय यह कि लोगों का स्वभाव ही वैसा बन जाता है। बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जो दूसरों की पंचायत बहुत करते हैं। मांग के खाने वाले का स्वभाव ही मांगना हो जाता है। क्रोध तो सभी को आता है और शान्त भी हो जाता है किन्तु कोई तो क्रोध के वशीभूत होकर अपने को भी खा लेते हैं।

(बच्चे की इच्छा वाली औरत और ठग आदमी की कहानी :—)

स्वभाव के अन्दर ही स्वभाव भी होता है। जो बड़ा ही कठिन होता है। यदि वह अच्छे मार्ग की ओर है तब तो ठीक है नहीं तो खतरनाक। एक पाप तो अनजान का होता है वह छोटा पाप है। एक जो जान में होता है वह तो भीषण पाप होता है। अनजान का पाप तो क्षम्य है किन्तु जान का पाप तो अक्षम्य है।

समस्त कर्मों के अन्दर सत्यता होनी चाहिये तभी वह फलदायक होगा। छोटे से छोटे कर्मों में सत्यता का ध्यान रखना चाहिये। मशीन में जैसे रस पेरा जाता है वह उपयोगी होता है इसी प्रकार मनुष्य को भी सत्य कर्म रूपी कोल्हू में पिरना चाहिये जिससे उसके गुण निखर उठें एवं सर्वोपयोगी बन सकें।

इस लोक से भी परे इसी लोक में दूसरा लोक है। जहां हम जा सकते हैं जो अनुभवहीन है। वह सदैव भविष्य की बात करता है। अनुभवी पुरुष तो सदैव सिंह की सी बात बोलते हैं। जो दूसरों के आश्रित हैं उनकी सियार की तरह बोली है। अगुरु और गुरु में बहुत अन्तर है अगुरु की बात उलझी हुई होती है और गुरु की बात सुलझी हुई होती है।

जहां शव पड़ा होता है वहां गिद्ध कौवा कुत्ता आदि होते हैं लेकिन जहां महापुरुष आदि होते हैं वहां तो ज्ञानी ध्यानी आदि सभी तरह के लोग पहुँचते हैं। विचारा महापुरुष क्या करे? अनुभवी पुरुष का सतसंग करके उनकी दया से हम अपने को भी पा सकते हैं। महापुरुष तो त्रिकालदर्शी होते हैं क्योंकि उनका हृदय स्फटिक मणि की तरह निर्मल होता है। किसी के भी हृदय की बात उनको अपने हृदयरूपी दर्पण में बड़ी आसानी से दिखाई दे जाती है जिससे वो सबके हृदय की बात जान जाते हैं।

भगवान से विमुख कभी न होना चाहिये। विमुख होने पर सुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। ऊपर सुख भले ही हो मगर आन्तरिक सुख नहीं मिल पाता।

झूठे सुख को सुख कहत, मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥

श्री राम सीता राम—श्री राम सीता राम
श्री राम सीता राम—श्री राम सीता राम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

मां वही है जिसमें मां का तत्व तथा भाव हो । केवल पाल-पोस कर बड़ा कर देने तथा पढ़ा-लिखा देने से ही वो मां के पूर्ण उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाती । उनमें तो मातृत्व होना चाहिये । कहा भी है—

कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति ।

एक भक्त जब प्रभू से मिलना चाहता है तब वह यह प्रयत्न करने लगता है कि मैं कैसे मिलूँ ? अतएव वो ज्यों-ज्यों मिलना चाहता है त्यों-त्यों अपने मानसिक विकारों को त्यागता जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि वह अपने में ही प्रभु को पा लेता है। परम प्रभू उसके उर में तो थे ही उसे पता नहीं था जब उसका हृदय और चीजों (विकारों) से खाली हो गया तो उसे पता चल गया । अनुभवी महापुरुषों के जो ग्रन्थ होते हैं उनका दूसरा ही प्रभाव मानव पर पड़ता है। निज स्वरूप की प्राप्ति अनुभवी पुरुषों द्वारा ही होती है । जो स्वयं ही नहीं खा सकता वो दूसरों को क्या खिला सकता है । कब तक मांग कर खायेगा और खिलायेगा इसी तरह दूसरों के अनुभव

को लेकर कोई कहां तक किसी पर असर डाल सकता है। कल्याण तो अनुभवी पुरुष के द्वारा ही हो सकता है।

गुरु ऐसा कीजिये जो शिल्पीकार होय।
जन्म जन्म की मूरछा क्षण में डाले धोय ॥

तुरन्त दान महाकल्याण—सद्गुरु तो तत्काल ही अनुभव करा देते हैं। सद्गुरु की बात जन्म-जन्म की नहीं होती बल्कि इसी समय यानी वर्तमान के लिये ही होती है। वो तो कहेंगे कि श्याम सुन्दर यहीं मिलेंगे, अभी मिलेंगे।

कुकर्मी तब तक ही दुष्कर्म करता रहेगा जब तक प्रभू उस पर दृष्टि नहीं डालते। दृष्टि डालते ही उसके सब पाप को भस्म करके उसे जीव से शिव बना देते हैं। गुरु के द्वारा ही श्रेष्ठ उत्तम कर्मों का संकेत मिलता है। सतगुरु उस दुकानदार की तरह हैं जिसके पास सब तरह की वस्तु उपलब्ध है हां जीव को समझने की अवश्य कमी है। इस संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं है। एक बुढ़िया थी जो माघ महीने में गंगा जी स्नान करने गई। तिल तथा मेवे के लड्डू बना कर ले गई। संघ में गोपाल जी की मूर्ति भी ले गई। जल्दी से गंगा जी में डुबकी लगाई. ठाकुर जी पर भी पानी डाला गुड़ की ढेली उनकी आगे रख दिया और स्वयं बढ़िया लड्डू लेकर खाने बैठ गई। अन्य लोग तो अपने स्नान पूजा-पाठ में लगे रहे और बुढ़िया अपने खाने में। गोपाल जी ने सोचा इसकी चोरी पकड़ेंगे। क्योंकि यह बिना पूजा-पाठ किये खाती है। दूसरे मुझे बिना भोग लगाये खाती हैं तीसरे अन्य से छिपा कर खाती है चौथे झूठ भी बोलती है। इस प्रकार पच्चीस दिन बीत गये। उसके बहू बेटे आये, पानी खूब बरस रहा था। ठण्डक में अब वह

कैसे नहाने जाये? बुढ़िया भूख से तड़पने लगी ज्यों ही वह लड्डू खाने लगी उसका भंडाफोड़ हो गया। इस तरह भगवान ने उसे सुधारा।

अर्थात् दुश्मन भी मित्र हो जाते हैं। यदि सत्यता है तो समस्त कर्म सफल हैं नहीं तो सत्यता बिना सब कर्म निष्फल। बुढ़िया की तरह यहाँ लड्डू खाने आई थी माघ नहाने नहीं। अतः ज्यों ही २५ वें दिन लड्डू मुँह में डाली उतने में ही पड़ोसिन आ गई गङ्गा जी लिवा जाने के लिये। बुढ़िया महारानी मुँह में लड्डू दबाये हुये थी इतने में बहू भी आ गई। विचार करने से पता लगता है कि यही नर्क, स्वर्ग साधु, सन्त, अच्छा बुरा सभी यहीं मिलता है कर्म में भी सब बराबर नहीं मिलता। क्रोध में भी सभी बराबर नहीं है। ज्ञान भक्ति एवं सत्संग का लाभ तो उस वस्तु से जानना चाहिये जो वास्तव में प्राप्त करने योग्य है। जैसे निज स्वरूप की प्राप्ति अंधेरे से उजाले में आ जाये। न कि धोती, कपड़ा से उस लाभ की समता दें। महापुरुषों का सत्संग ज्ञान भक्ति धर्म करने के फलस्वरूप तत्व की प्राप्ति होना ही लाभ है।

एक छोटी लड़की थी, किसी राजा ने उससे पूछा तुम्हें क्या चाहिये? लड़की ने कहा चीनी। वह कहावत सत्य प्रतीत होती है "जैसा रोगी वैसी औषधि" यानी वैसा ही पथ्य दिया जाता है।

दृष्टांत—मानव को कर्मानुसार फल प्राप्त होता है। योगी सन्यासी होने पर पूर्व कर्म का भोग भोगना पड़ता है यदि वर्तमान शरीर के द्वारा प्रबल पुरुषार्थ होता है तब भले ही उस कर्म को काटा जा सकता है। एक घसियारा था। नित्य प्रति घास काट कर बेचता और चार आने प्राप्त कर जीवन यापन करता था

अपनी नित्य क्रिया से ऊब कर संन्यासी बनकर जंगल चला गया वहाँ भी वही चार आने प्राप्त कर लेता था। उसी जंगल में जहाँ घसियारा रहता था एक राजा अपनी वैभव सम्पत्ति से वैराग्य को धारण कर तपस्या करने के लिये आ गया। राजा की तपस्या के चार दिन के पश्चात ही अनेकों दर्शक आकर दर्शन करने लगे एवम् भेंट चढ़ाने लगे। घसियारे ने जब राजा का इस प्रकार वैभव देखातो उसको ईर्ष्या होने लगी और सोचने लगा मैं इतने वर्षों से तपस्या कर रहा हूँ किन्तु मुझे तो चार आना ही प्राप्त होता है और यह कल का साधु आज समृद्धि सिद्धी चरणों में लोट रही है। राजा का अन्तःकरण शुद्ध था। वह घसियारे के मनकी बात समझकर जो कुछ भी चढ़ता घसियारे के पास भेज देता था। कहने का तात्पर्य यह है कि साधु का वेष धारण करने से साधु नहीं हो जाते। अन्तःकरण से वैराग्य होना चाहिये।

हम लोग तो ज्ञानी भक्तों से अधिक प्यार करते हैं लेकिन जिस प्रकार के भी भक्त आ जाते हैं उनका मीठे बचनों से सत्कार करते हैं कि क्रमशः ये विकार रहित हो जावेंगे।

चैतन्य महाप्रभू एक दिन संकीर्तन के साथ नगर में जा रहे थे। दो राजकुमारों ने यह देखकर कहा—यह क्या है ? भक्तों ने कहा जीवन का सार। फिर किसी ने कहा—क्या ईश्वर इस प्रकार मिलते हैं ? उन लोगों ने कहा, हाँ ! हमें पूरा विश्वास है। लोगों ने कहा हम चैतन्य महाप्रभू से मिलेंगे। वह प्रभू प्रेम में तल्लीन थे। उन्हें देहाभिमान था ही नहीं। राम-नाम के रस में विभोर थे। वे लोग भी इस आनन्द का अनुभव करना चाहते थे एवं जिज्ञासा प्रकट की। भक्तों ने कहा, परम त्यागी स्वरूप बन जाइये। दोनों राजकुमारों ने तत्काल ऐसा ही किया और राज्य में कहला दिया कि हमने जीवन का सार समझ लिया है अब वहां नहीं आयेंगे।

पन्द्रह दिन बाद चैतन्य महाप्रभू को पता लगा। उन लोगों को बुलाया और पूछा कैसा आनन्द मिला ? वे राजकुमार अवर्णनीय आनन्द का क्या वर्णन करते ? वे अपलक यों ही खड़े रहे।

महापुरुषों के पास भले बुरे सब पहुँचते हैं किन्तु जब खरे वीर, त्यागी, भक्त मिल जाते हैं तब भक्ति का झन्डा विश्व में फहरा देते हैं और निज स्वरूप दर्शन कराकर आनन्द का अनुभव कराते हैं बताने से आनन्द नहीं मिलता गुड़ का स्वाद खाने से मिलता है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवा—

———

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

गुरूब्रह्मा, गुरूविष्णु, गुरू देवन के देवा ।
सर्वं सिद्धि फल देत गुरू आप ही मुक्ति करेवा ।।

गुरू केवट आप होई करी करो भवसागर पारी ।
जीव ब्रह्म कर देत हरी आप हो ब्याधा हारी ।।

जिसकी दृष्टि जैसी होती है वह वैसी ही दृष्टि से अन्यों को भी देखता है। मुझे तो खरा सच्चा ही व्यक्ति पसन्द आता है प्रेमी हो तो सच्चा, त्यागी हो तो परम त्यागी। किसी वस्तु को छोटा नहीं समझना चाहिये। अपनी दृष्टि छोटी मत बनाओ। कुछ दिन सत्संग करो तब तो सुधार होगा।

प्रथम भक्ती संतनकर संगा,
दूसर रति मम् कथा प्रसंगा ।

प्रथम भक्ती कितनी बड़ी वस्तु को बताया है। इस सत्संग के द्वारा ही जीव अपना कल्याण कर पाता है।

नरोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ।।

व्रतानि यज्ञाश्छन्दासि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥

(श्री मद्भा० १२। १-२)

अर्थात् मैं न तो योग से इतना प्रसन्न होता हूँ न साँख्य से, न दक्षिणा से, न ब्रत से, न यज्ञ से, न वेदाध्ययन से, न तीर्थाटन से और न यम-नियम से ही इतना वशीभूत होता हूँ जितना सतसंग से प्रसन्न होता हूँ क्योंकि सतसंग से सारी आसक्तियों का नाश हो जाता है।

जैसी भावना होती है वैसा ही फल भी मिलता है प्रभू को जिसने जिस भाव से देखा उससे प्रभू भी वैसे ही मिले। जरा विचार कीजिये भाव बड़ा कि व्यक्ति बड़ा ? महा से महापुरुष हो यदि हमारा भाव तुच्छ हो तो वह महापुरुष हमारी दृष्टि में छोटा बिना तत्व का दिखाई पड़ेगा। छोटे-छोटे कर्मों के बाद ही बड़ा और शुभ कर्म होता है। छोटा सा बीज ही एक दिन बड़ा सा वृक्ष होता है। पाषाण की देवता की सी पूजा करने से मानव जागृत देवता बन जाता है।

एवम् श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

गुरु गीता में कहा है, जो गुरु की निन्दा करे या सुने जब तक सूर्य चन्द्र हैं तब तक उसे नरक में वास करना पड़ता है। गुरु गीता में जो कुछ गुरु के लिये कहा गया है वह सत्य है। गुरु तो ईश्वर ही है। पर ऐसा गुरु हो जो निज स्वरूप का दान दे। एक स्त्री ने अपने तन को ही जला दिया जब उसके अन्दर गुरु के प्रति मानव का भाव आया।

गुरुदेव कहते थे, जिस बात को गुरु के मुखारविन्द से सुनते हो उसको कार्य रूप में करो। फसल की चीज तो सभी जगह दिखाई पड़ती है, पर बिना फसल के भी तो कहीं एक दो हो। जैसे सतयुग होता है तो धर्मज्ञ, सतपुरुष, धर्म सभी जगह दीखता है किन्तु कलियुग में दुष्कर्म अधिक और कहीं-कहीं ही धर्म सतपुरुष सत्यता दिखाई पड़ती है।

नाविक का काम है नाव को चलाना तुम जिस दिशा में भी जाना चाहो नाविक चलाकर ले जावेगा। सूर्य का प्रकाश देना तुम्हें चाहे उससे सुख हो या दुःख पर वह अपना कार्य नियम से देता है। क्योंकि उसका यही कर्तव्य है जिससे लाखों को लाभ है। गाय को चाहे मारो, चाहे पीटो लेकिन दूध देने वाली गाय दूध देती ही है। इसी प्रकार सबका कर्तव्य है लोकोपकार करना और भगवत भजन में लगे रहना। वह प्रत्येक परिस्थिति में कर्म करता ही रहेगा। हमें अपने पर ध्यान देना चाहिये कि हम विकारों की बीमारी से बचे रहें। जैसे हैजा फैलने पर कोई नगर नहीं छूटता लेकिन टीका लगाकर या नगर छोड़कर लोग उससे बचने का उपाय निकालते हैं। हृदय की अटलता सबसे बड़ी वस्तु है। 'संशय'आत्मा विनश्यति'। जो भ्रम में पड़े रहते हैं अपनी बात के पक्के नहीं होते उनकी किसी भी क्षेत्र में कीमत नहीं होती।

सत्य कर्म पर अटल रहने वाले अपने वचन की सार्थकता और पुरुषार्थ में लगे रहते हैं। जिससे सफलता प्राप्त होती है समय आने पर मानव अपनी परख अपने आप कर लेता है कि वह कितने गहरे पानी में है। सत्य कर्म की ओर प्रवृत्त रहना चाहिये।

कबीर कहें हरि हरि, फिर हरि कहें कबीर कबीर।

यहाँ सत्यता की प्रधानता है जिसमें ईश्वर को ही झुकना पड़ता है।

संसार में परलोक का अर्थ है कि मरने के पश्चात् कोई दूसरे लोक में जाना पड़ता है जो सत्कर्म से प्राप्त होता है। माया की दुनियाँ में न कोई जाता है और न हम देखते हैं छिपा हुआ अदृश्य जो परलोक है वह कोई दूसरी ही वस्तु की बात है उसकी बात जाने दो यहाँ वाले परलोक की बात है।

जहां भगवान की, उनके गुणगान की चर्चा न हो, विषय-वासना झूठ-सत्य का पता न हो वही लोक है। पर जहां इसके विपरीत सत्यता, कल्याणकारिता, भगवत भजन, भगवत गान हो वही परलोक है। उत्तम करनी से हम परलोक तथा अधम कर्म से ही हमें नर्क प्राप्त होता है। अपने में ही लोक और अपने में ही परलोक है।

हम जैसी भावना से देखेंगे वैसे ही यह स्थान दृष्टिगत होगा। जैसी भावना और वृत्ति हमारी होगी वैसे ही लोक और परलोक होगा। विषयी के लिये हर स्थान में लोक और ज्ञानी के लिये हर स्थान परलोक है—

जिन्हें है प्रेम प्रीतम से, उन्हीं का काम पक्का है।
जहाँ चाहे रहे उनको, वही काशी व मक्का है॥

अपनी सुख व शान्ति के लिये सर्व प्रथम प्रयत्न करना चाहिये। नर्क, स्वर्ग, कलियुग, सतयुग दूर नहीं है। सब अपने आप में है। अपने आपसे अलग कोई चीज नहीं है। गुरु केवल बता कर ही छोड़ नहीं देते अनुभव भी करा देते हैं। हमारा गुरु के बराबर कोई भी हितैषी नहीं है।

होश-बेहोश में भी तीन खण्ड हैं :—

जो आदमी होश में होगा वह न खराब कर्म करेगा और न खराब बचन बोलेगा।

मनुष्य चाहे मदिरा पीकर हो चाहे मन की कमजोरी से जो कर्म करता है वह भी बेहोशी में ही करता है और किसी को बेहोशी का ही रोग होता है, हाथ-पैर पटकता है। उसमें चैतन्यता या विवेक बुद्धि नहीं रहती। उसको पता ही नहीं कि हम कहाँ जा रहे हैं ? क्या कर रहे हैं। लोक में रह कर जितने भी कर्म करते हैं सब बेहोशी में ही करते हैं। जैसे स्त्री को मारना, घर में आग लगाना, बुरे बचन बोलना, संसार के प्रपंचों में जाते हुए व्यक्ति ईश्वर की ओर से बेहोश रहते हैं, गाली देना, चिल्लाना, बकना-झकना, धर्म को न मानना, मन्दिर में घुस जाना, भाव-भजन करने वाले को ढोंगी बताना, ये सब बेहोशी में ही करते हैं। यदि ऐसे व्यक्ति होश में होते तो कभी ऐसा न करते।

मानव का कर्तव्य क्या है। उसको वे समझते नहीं, वह भीतर का भाव जानते ही नहीं। एक बाबा कहते थे, यह संसार मुर्दे का बाजार है, जिन्दा तो केवल कुछ ही हैं। इस प्रकार संसारी जीव जो ईश्वर से विपरीत चलते हैं वे बेहोश हैं। बेहोश होने के कारण जैसा करना चाहिये वैसा वे नहीं कर पाते। वे ब्रह्म स्वरूप नहीं हो पाते। पंडित या कथावक्ता जो इतना बोलते हैं तथा सबको सद्‌उपदेश देते हैं वे भी केवल जिभ्या से बेहोशी में कहते हैं अगर होश में होते तो उसी उपदेश से जो दूसरों को कहते हैं तत्व को जान लेते। कीर्तन, भजन पूजन मार्ग में भी लग कर लोग बेहोश रहते हैं। वे सब कुछ जानते-समझते हुए भी परमात्मा तथा गुरु में भिन्नता मानते हैं

और कहते हैं, हम राम के भक्त हैं, कृष्ण भक्त के यहां नहीं जायेंगे। वे अजीब बेहोशी में रहते हैं। दो कहां से आ गये। भगवान भी कहीं चार-छैः होते हैं।

ऐसे लोगों के हृदय में अपरा बुद्धि होती है। वह महान आत्मा एक ही है। उस सांसारिक बेहोशी को छोड़ कर होश में तो आते हैं किन्तु वहाँ भी बेहोश रहते हैं।

बोल श्री गुरुदेव भगवान की जै!

हरे राम हरे राम, राम राम हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

सत्कर्म करने से हृदय में स्वतः ही शुद्ध पवित्र भावना उत्पन्न होती है । एवं हृदय स्वतः ही निर्मल, परम, शान्तिमय मालूम पड़ता है । किसी से झगड़ा करो, अन्य सांसारिक कार्य करो तो दूसरों से भी उसी प्रकार का मन हो जाता है ।

आज रामनाथ भगवान श्री सीताराम जी पर चढ़ाया गया है । हमें कर्म करवाना आवश्यक है, मानव जीवन ही कर्म प्रधान है शुभ सतकर्म अवश्य करवाना चाहिये । भगवान का नाम राम कृष्ण क्यों है ? यह केवल रख भर ही नहीं दिया गया है इसमें अवश्य रहस्य है । राम शब्द के आनन्द विशेष तत्व, विशेष शक्ति, विशेष गुण है—

रमन्ते योगिने यस्मिन् नित्या नन्दे चिदात्मनि ।
इति राम पदेनासौ एवं ब्रह्माभिधीयते ॥

अर्थात् जिस नित्यानन्द चिदात्मा में योगी लोग निरन्तर रमण करते हैं, वह परब्रह्म 'राम' पद से कहा जाता है ।

—श्री वशिष्ठ जी

शुभ कर्म हर घड़ी हर पल करना चाहिये । जितना नाम जप सकें, करें । संसार को हमने ही पकड़ रक्खा है, संसार ने हमें नहीं । संसारी प्राणी तो बन्धन से मुक्त होना कभी न चाहेगा । लेकिन कर्म तो स्वतः ही करना होगा । अपने आप गृहस्थी से

अवकाश लें तभी शुभ कर्म कर सकेंगे। थली में सामने रक्खा हुआ भोजन भी उठाना पड़ता है अपने आप उठकर नहीं चला जाता। अगर कोई मुँह में डाल भी दे तो बिना मुँह चलाये वह खाना अन्दर नहीं जा सकता यानी भोजन चबाने और निगलने के लिये अपने आप कर्म करना पड़ता है।

भगवत् कर्म—हम समझते थे कि केवल सद्‌बुद्धि वाले लोग ही करते हैं किन्तु हमने यहां आंखों से देखा कि इधर सद्कर्म करके जाते हैं और उधर दुष्कर्म नीच से भी नीच कर्म करते हैं हमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसका क्या मतलब? सोचने पर पता लगा कि यह शुद्ध सतकर्म नहीं है वैसे ही छल से करते हैं इसीलिये इनको इतना फलदायक नहीं होता। चकमक में आग इसीलिये नहीं आती कि आग प्रकट करने वाली असल वस्तु वह नहीं है। सतकर्म करते हुये बन्धन में पड़े रहना दुःख भोगते रहना आदि का यही चकमक पत्थर जैसी शुद्ध भावना का न होना ही है इसीलिए वे सुख शान्ति नहीं पाते अपने आप और अवगुण अपने को ही नहीं दीखता।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै!

———

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

जय जय सत गुरु दीन दयाला आपको लाखों प्रणाम !

किसी कार्य के दो पक्ष हैं और दोनों का कराने वाला ईश्वर ही है तो दोनों पक्ष निर्दोष हैं। दोनों ही ईश्वर की इच्छा से प्रेरित होते हैं।

हमारा पिछला कर्म तो परीक्षा रूप से बैठा रहता है जिसे 'दैव' कहते हैं। भावना ही से वस्तु प्रिय होती है। वस्तु में रूपता कुरूपता नहीं—भाव में रूपता-कुरूपता है। क्योंकि जो एक को प्रिय है वही दूसरे को अप्रिय। दूसरे को अप्रिय है तो एक को प्रिय है। जब तक मानव अपने आप आदर्शवान न हो तब तक दूसरे के ऊपर उसका असर नहीं पड़ सकता। त्यागी की शिक्षा ही त्याग सिखाने के लिये होगी। तपस्या से जो ऋद्धि सिद्धि आती है इससे यदि अहङ्कार उत्पन्न हो जाय तो वह स्वयं को ही नष्ट कर डालती है। राग दोष जैसे ही उत्पन्न हो उनको तत्काल समूल नष्ट कर देना चाहिये। मानव क्या नहीं कर सकता ? फिर अपनी निजी दमन शक्ति के द्वारा अपने जीवत्व को क्यों नहीं छोड़ देता ? पहले स्वयं बने तब अन्यों को बना सकते हैं। त्यागमय जीवन ही सुखी जीवन है। वस्तु का दोष नहीं मानव का दोष है। भोजन का क्या दोष बनाने वाले की पाक कुशलता से ही अच्छा स्वादिष्ट बन सकता है। इसी प्रकार गुरु का क्या दोष। वह आदर्शवान गुण सिखाते हैं आप उन आदर्शों का अवलम्बन नहीं करते तो उनका क्या दोष ?

संस्कार ही सब कुछ होता है तो प्रयत्न नामक शब्द ही न बना होता। प्रयत्न शब्द होने का अर्थ यही है कि प्रयत्न संस्कार को काटकर सफलता देती है। समय-समय की बात है एक ही नियम प्रत्येक वस्तु पर और प्रत्येक समय पर लागू नहीं होता। प्रभु दुष्टों के वैभव काल में भक्तों के लिये विशेष दयालु होते हैं। गुरु एवं पूज्य बड़े जनों में बहुत अन्तर है। पति, माता-पिता, सास, ससुर, से गुरु इसीलिये बड़े बनाये गये हैं क्योंकि वे ज्ञान शक्ति पर आरूढ़ हैं। उधर ब्राह्मण एवं ब्रह्म ज्ञानी में भी अन्तर कर दिया गया है। ब्रह्म ज्ञानी को इसीलिये बड़ा कर दिया गया है क्योंकि उसमें ब्रह्म शक्ति है। ज्ञान तो दोनों में है किन्तु एक केवल वक्ता ज्ञानी दूसरा कर्म ज्ञानी और अनुभव पारायण भी है। साधु सन्त ईश्वर से भी बड़े कहे जाते हैं। विष्णु भगवान ने नारद जी से कहा—एक स्त्री को सात जन्म तक लड़का नहीं होने को था। किन्तु उस स्त्री ने सन्त को सात रोटी खिलाई उसके बच्चे हो गये। यह कर्म की प्रधानता है। पुण्य युग कर्म भूत के संस्कारिक कर्म को काट सकता है। महापुरुषों से तत्व लेने का साधन होता है।

भगवान ने इन चीजों को अपने मार्ग में लाने के लिये अनेक ढङ्ग से निकाल दिया है जिससे लोग उनकी शरण में आ जाते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै!

———

जय-जय सतगुरु दीन दयाला, आपको लाखों प्रणाम।

कोई मकान बनाओ और उसमें यदि कोई न रहे, बहुत दिन यों ही पड़ा रहे तो शीघ्र ही गिर जाता है पर उसमें रहने से मनुष्य की देह की सर्दी गर्मी से रक्षा हो जाती है। मनुष्य के रहने से गृह में प्रकाश होता है, अग्नि जलती है इससे उसमें मजबूती आती है। इसी प्रकार हर एक बात का सम्बन्ध है।

भगवान का अवतार सतगुरु रूप में इसीलिये संसार में होता रहता है कि धर्म रूपी घर की नींव दृढ़ बनाते चलें और अपने धर्म प्रचार के द्वारा धर्म को मजबूत करते रहें। यह सब केवल जानने से नहीं होता करने से होता है। सतगुरु कर्म को कराते हैं। प्रजा का दशांस पुण्य राजा को, इसी प्रकार राजा का प्रजा को और वैसे ही पाप भी एक दूसरे को लगता है। इसी प्रकार परिवार वालों के पाप पुण्य का दशांस एक दूसरे को लगता है। यह जो धर्म शास्त्र में लिखा है वह तो ठीक ही है किन्तु अपने ही तापने से सर्दी मिटती है, दूसरे के तापने से नहीं। इसी प्रकार अपने पाप पुण्य करने से अपने को छोड़कर शान्ति देते और इस प्रकार उस पुण्य का फल मिलता है। अपने हिस्से का पुण्य ब्राह्मण से करा देने से पुण्य फल तो मिलता है किन्तु अपने आप ही करने से जो शान्ति, पवित्रता और पुण्य मिलता है वह उसके करने से नहीं।

स्वयं ही कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। प्रत्येक के शरीर के अन्दर क्षिति, जल, पावक, वायु और आकाश रहने के लिये स्थान बने हैं। दूसरे के शरीर में तेल लगाने से हमारे शरीर के अन्दर तेल नहीं चला जायगा। वैराग्य के बिना भक्ति होने से

ही हमारी भक्ति नहीं फलती। जितने लोग होते हैं उनकी निज-अलग-अलग प्रवृत्ति होती हैं। कितनी स्त्रियाँ पति के मरने के पहले मरने की इच्छा करके मर भी जाती हैं किन्तु कोई पति को भी मारने वाली होती हैं लेकिन एक किसी के बुरे यानी खराब निकलने का मतलब यह नहीं है कि सभी खराब होते हैं। माँ का एक बच्चा खराब निकलता है तो क्या सभी बच्चे खराब होते हैं। राम-नाम तो वही राम-नाम है लेकिन जपने वाले सभी एक से नहीं होते। हनुमान जैसे सभी जप लेते तो सभी का कल्याण हो जाता। सभी उसी श्रेणी तक पहुँच जाते।

सिखाना बड़ों का धर्म है सीखना न सीखना आपका। क्या सर्दी में गर्मी और गर्मी में सर्दी का अनुभव हो सकता है? लेकिन जो सिद्ध सन्त होते हैं उनमें गर्मी सर्दी का अधिक अनु-भव नहीं होता है।

प्रारब्ध के मुताबिक दुःख सुख मिलता है। ज्ञानी के लिये ज्ञान ही दुःख सुख रहने के लिये बरसाती के समान है। महा-पुरुषों को ज्ञान के द्वारा दुःख और सुख रूपी चिन्ता व्याप्त ही नहीं होती। दूसरा है जैसे सर्दी गर्मी है— हमने कहा सर्दी नहीं है ठंड में चल दिये गर्मी नहीं है धूप में चल दिये—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुख:दुखदा: ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।१४।।

हे कुन्ती पुत्र? सर्दी गर्मी और सुख दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षण भंगुर और अनित्य हैं, इसलिये हे भरतवन्शी अर्जुन! उनको तू सहन कर।

मानने पर ही सब कुछ है। मानो तो देव नहीं पत्थर। एक मनुष्य कितना कार्य कर सकता है, कहाँ तक कर सकता है? एक

गधा एक मन का बोझा ही ढो सकता है अधिक नहीं। इसी प्रकार मनुष्य कितना कर्म कर सकता है यह उसकी प्रत्यक्ष शक्ति पर निर्भर होता है। वह अपनी शक्ति के मुताबिक ही कार्य कर सकेगा।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देवः॥

जय जय सतगुरु दीन दयाला
आपको लाखो प्रणाम—

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

———

७

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः: ।
गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम् देव देवः ॥

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम

जितना भी कार्य प्रभु के निमित्त किया जाता है वह सब सेवा एवं तपस्या में गिना जाता है केवल न खाना और बैठकर माला जपना ही तपस्या नहीं है।

संत महापुरुष जो कुछ भी करते हैं वह ठीक और नीति का विचार करके लोक कल्याण करने के लिये ही करते हैं। वे बने बनाये आत्मदर्शी होते हैं वे साधक सिद्धक नहीं होते वे स्वयं सिद्ध होते हैं जो कुछ करते हैं वे विचार करके करते हैं। उनकी लीला और कृत्यों पर दोषारोपण करना अपनी मूर्खता है।

सतगुरु अनुभव कराकर शिक्षा देते हैं वे उचित उपदेश द्वारा शङ्का समाधान करते हैं। सतगुरु सन्त महाराजों के भी राजा और विश्वपति होते हैं।

मोंते अधिक मोर कह दासा

एक महात्मा थे वह परम त्यागी और तपस्वी थे। उनकी तपस्या एवं त्याग से प्रभावित होकर एक राजा उनके सत्संग के

लिये जाया करता था। धीरे-धीरे उसने महात्मा जी का शिष्यत्व धारण करके उनके लिये समस्त सुख सामग्री का आयोजन कर दिया। एक दिन राजा सोचने लगा मेरे तथा महात्मा जी में क्या अन्तर है ? मेरी ही तरह वह समस्त भोगों को भोगते हैं। महात्मा जी राजा के अन्तःकरण की बात समझ गये। दूसरे दिन जब राजा सत्संग के लिये आया। महात्मा जी ने कहा— राजन् ! मेरे में तथा तुम्हारे में क्या अन्तर है ? यह मैं अभी प्रमाणित करता हूँ। महापुरुषों का भोग भुने चंने के सदृश अन-उपजाऊ होता है। वह इच्छा रहित होते हैं ऐसा कहकर उन्होंने अपनी कुटिया में आग लगा दी। तत्पश्चात् राजा से कहा तुम भी इसी दियासलाईके द्वारा अपने राजमहलमें आग लगा दो राजा चरणों पर गिर पड़ा एवं अपनी मूढ़ता के लिये क्षमा माँगते हुये कहा, गुरुदेव मैं आपका सेवक हूँ। हमारे तथा आप में यही अन्तर है। आप जिस काम को कर सकते हैं मैं नहीं कर सकता।

आत्मा सबकी एक है, शरीर वही पंच तत्व का बना हुआ है किन्तु दृष्टान्त द्वारा बताया गया कि व्यवहार में अन्तर थोड़ा करना ही पड़ जाता है। गाय का दूध और कुतिया का दूध एक ही है। गाय का दूध क्यों पिया जाय ? कुतिया का क्यों न पिया जाय ? पर गाय का ही दूध पिया जाता है। वस्तु न होने पर उप-भोग न करें तो कौन सी बात है ? वस्तु होने पर उसको त्याग करें तो बड़ी बात भी है।

भगवान सतगुरु जैसा पात्र देखते हैं उससे वैसा ही काम करवाते हैं। जो जिसको जैसा मानता और देखता है वह स्वयं भी वैसा ही रहता है। शीशे के सन्मुख आपका पूरा ज्यों का त्यों आकार आयेगा उसी प्रकार सतगुरु के सन्मुख जाने से उनके हृदय रूपी दर्पण में आपके पूर्ण हृदय का आकार उतर

आयेगा। आप नहीं समझ पायेंगी किन्तु वे समझ जायेंगे कि आप किस दर्जे के और कहाँ तक हैं।

एक मनुष्य जब अनेक कार्य कर सकता है तो फिर भगवान की बात क्या वह तो असीमित कार्य कर सकता है। वह तो इतना अधिक कर सकता है कि अपनी इच्छा से कुछ कर ही नहीं पाता। वह अवतार भी आपके ही लिये लेता है। जब मानव अनेक कार्य कर सकता है तो भगवान की क्या बात।

आप लोगों को अपने कार्य की सीमा नहीं बाँधनी चाहिये। किसी वस्तु का पोल उसके भीतर घुसने से पता चलता है। इसी प्रकार परमात्मा का भेद सत्संग करने से ही पता चलता है। मानव सच्चिदानन्द स्वरूप है यदि वह उस शक्ति को प्राप्त कर ले तो जितना चाहे प्राप्त कर सकता है। अपनी शक्ति अपने ही हाथ में है। वह जितना चाहे बढ़ा और घटा सकता है, अपने व्यवहार तथा कर्म से जितना चाहो ऊपर उठ सकते हो प्रत्येक कार्य कर सकते हो। लेकिन वाह्य कर्म से शान्ति नहीं मिल सकती। शान्ति तो अपने आन्तरिक कर्म से ही प्राप्त हो सकती है।

रघुपति राघव राजा राम
पतित पावन सीता राम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देवः ॥

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवम्

यह घोर कलिकाल है इसमें अधर्म अधिक हैं धर्म कम। अधर्म को ही सत्य और ठीक माना जाता है। धर्म वानों को बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है। ईश्वर की कृपा और आत्मबल के सहारे ही हम उसका सामना कर सकते हैं। मानव जिस वस्तु का आधार लेकर चलता है उस आधार का गुण उसमें उतर जाता है। युग-युग की भक्ति युग-युग के सदृश होती है। सतयुग का साधन दूसरा ही है, कलिकाल का दूसरा ही। पुण्य का फल अलग मिलता है पाप का फल अलग। किन्तु किसी-किसी महापाप से पुण्य का भी फल नहीं मिलता। कोई चोरी करता है तो जाप करता है कि मेरी चोरी न खुले लेकिन यह जप निरर्थक होता है।।

गीता में कहा है—भक्तों के लिये हम भगवान और दुष्टों के लिये काल हूँ। यह बात सत्य है ऐसा करना ही पड़ जाता है। ईश्वर कर्म का फल अवश्य देता है।

अपने आप में शान्ति या वाह्य कर्मों में है ?

मानव के हृदय में तो शान्ति है ही ,किन्तु स्वभावानुसार, रुचि, अनुकूल या आदत अनुकूल जिसको जिस वस्तु की जैसी आदत होती है उसको उसी में शान्ति मिलती है ।

जान समझ लेने पर भी जब तक उसको प्राप्त न कर लेंगे तब तक त्याग रूप में ले लेने से ही सुख शान्ति मिलती है । कोई असत्य कहता है दुर्वचन बोले हम सोच लें जाने दो, कहने दो तो शान्ती मिल जायगी । कोई वस्तु नहीं प्राप्त होती, ईश्वर इच्छा करके छोड़ दो शान्ती प्राप्त होगी । यानी त्याग करके चलने से ही शान्ती प्राप्त होती है ।

पाप पुण्य हमीं बनाने वाले हैं । कहते हैं पाप कर्म करके भी यदि हम उसके लिये पश्चाताप न करें तो पाप नहीं लगता । किन्तु पाप करते-करते एक समय ऐसा आ जायेगा कि प्रत्यक्ष पाप मूर्ति रूप धर कर हमारा पाप कहने के लिये आ जायेगा ।

बोलो श्री गुरुदेव भगवान की जै !

आवाज कै प्रकार की होती है ?

सीता पति श्री रघुनाथ लाई,
समझ रे मन ले अति भक्ति लाई ।
भक्ति में गद्य प्रभू मन लगाई,
दर्शन दोनूस समस्त लाई ।।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥
कर्पूर गौरं करुणावतारं,
संसार सारं भुजगेन्द्र हारं ।
सदा वसंतम् हृदयार्विन्दम्,
भवं भवानि सहितम् नमामि ॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

श्री गुरुवेनमः

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवम्

गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैं श्री गुरुवेनमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव;
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

आज केवल नाम महिमा के विषय में संक्षेप में बताया जायगा।

परिवा-प्रथम प्रेम बिनु, राम मिलन अति दूर।
यद्यपि हृदय निकट बसे, रहे सकल भरपूर ॥

[गो० तुलसीदास, विनय पत्रिका]

जैसे एक मास में कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष होता है जिसमें शुक्ल पक्ष शून्य समझा जाता है। जैसे काजल लगाने पर काजल नेत्र से सटा रहता यानी नेत्र के भीतर काजल रहता है किन्तु फिर भी काजल नहीं दीखता। लेकिन हम उस काजल को किसी किताब या लकड़ी के तख्ते पर देखना चाहें तो नहीं देख सकते उसे केवल दर्पण पर ही देखा जा सकता है आंख में मिला होने पर भी दर्पण से ही दृष्टिगोचर होगा। आटे में सना हुआ पानी हमें दिखाई नहीं पड़ता। अगर हम उस पानी को अलग करना

चाहें तो साधारण रूप से नहीं हो सकता। इसी प्रकार भगवान हमारे में हैं फिर भी हम देख नहीं सकते।

राम राम सब कोई कहें, दसरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ,फल होय॥

इसका साधारण अर्थ है कि राम राम सब कोई कहता है लेकिन दशरथ कोई नहीं कहता है यदि एक बार दशरथ कह दिया जाय तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाय। कहने का तात्पर्य यह है कि बहुत से लोग कहते हैं दशरथ जैसे राजा, जिन्होंने प्रभु राम को जन्म दिया जनक जैसा राजा, जिसने जानकी को जन्म दिया उसका ही जप करना चाहिए क्योंकि वह उनसे भी अधिक महान आत्मा होगी तब तो ऐसे प्रभू को जन्म दे सके। रामायण में कहा है कि मुझसे अधिक मेरे प्यारे भक्त हैं जिनको मैं अपना कह दूँ।

इस दोहे का दूसरा अर्थ यह लगता है कि समस्त इन्द्रियों का दमन करके यदि राम नाम जपा जाय तो मोक्ष की प्राप्ति होगी। यदि कोई इच्छा से नाम जप किया जाय तो भी फल की प्राप्ति होगी।

कहा है नाम जप भी जो इच्छा से किया जाय वह एक प्रकार का साधन है। और साधन द्वारा नाम जप का यथार्थ फल अवश्य मिलेगा। जैसे कहीं जाना है तो मोटर और इक्का दोनों से जाया जा सकता है पर इक्के से जाना और तथा मोटर से जाना और है।

नाम जप के दस अपराध बताए गये हैं?

१—संत निन्दा—एक तरफ तो जप दूसरी ओर संत निन्दा।

२—गुरु अवज्ञा।

३—ईश्वर में भेद बुद्धि—इस प्रकार ईश्वर जो एक है उसमें भेद बुद्धि नहीं रखना चाहिए। बाहर से व्यवहार में पूजा किया भी जाय किन्तु हृदय में भेद बुद्धि नहीं होना चाहिए। जैसे मेले में यदि मर्द और स्त्रियों का स्पर्श हो जाय तो दोष नहीं माना जाता।

४—शास्त्रों की निन्दा।

५—हरिनाम पर अविश्वास।

६—अन्य साधनों से नाम की तुलना—इसका तात्पर्य अन्य साधन जैसे दीपक जलाना, गंगा स्नान करना आदि शुभ कर्म और नाम की एक में ही तुलना कर देना।

७—श्रद्धाहीन को नाम का उपदेश।

८—नाम महिमा जानते हुए अविश्वास।

९—नाम के आधार पर पाप करना।

१०—विषय भोग आदि में आसक्त होकर नाम जपना।

इन दस अपराधों से बच कर ईश्वर का नाम जपे उसे ही नाम जप के फल की प्राप्ति होती है। धन, दौलत, पुत्र आदि की प्राप्ति तो कोई वस्तु है ही नहीं जब भगवान की प्राप्ति होती है तो अन्य वस्तु की कौन-सी बात है।

बिना पथ्य के कोई औषधि नहीं होती। जैसे किसी घाव में आपरेशन हुआ डाक्टर ने बताया आपरेशन की जगह पर पोटास के पानी से रोज धोया जाय। हम नमक के पानी से धोने लगें तो रोग और बढ़ गया इसमें डाक्टर का क्या दोष।

बहुत से लोग कहते हैं गुरु ने मंत्र दिया था हम रोज जपते हैं लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अरे जो पथ्य गुरुदेव ने बताया है उसका पालन करते हो? यह भी देखा है? अब जो

नाम जप करने वाले हैं वे सम्भल कर जपें, मन को शिथिल न करें, पुरुषार्थहीन न बनें, उत्साहहीन श्रद्धाहीन न बनें। सतत प्रयत्न करते रहने से एक दिन अवश्य सफलता मिलेगी। कुछ भी न हो तो जो भी महापुरुष हुए हैं कुछ न जानते हुए, सद्गुरु के चरण में जाकर ही परम पवित्र बन कर हरि नाम जपने से ही महापुरुष बने हैं। कहा है—

भाय कुभाय अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

इसका आशय यह है सब ही पथ्य को नहीं जानते न जानते हुए भी किसी रूप, किसी परिस्थिति में उस पवित्र नाम को अवश्य जपना चाहिए, उसका फल अवश्य मिलेगा। किन्तु जो इस नाम जप को दोषों से बच कर करेंगे उनको दूसरा ही फल मिलेगा।

महिमा जासु जानि गनराऊ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
महामंत्र जोई जपत महेसू।
कासी मुक्त हेतू उपदेसू॥

मन सुख चहसि ऐसे प्रभूहिं बिसारि

जिसके द्वारा परम सुख की प्राप्ति होती है उसको त्याग दे और फिर परम सुख चाहे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? जैसे कोई किसान पहली फसल की समस्त उपज को आलस्य और मौज से खा जाय और बीज के लिए कुछ भी न रखे फिर दूसरे वर्ष दुःख भोगे। इसी प्रकार इस जन्म में अगले जन्म के सुख रूपी बीज भोग कर समाप्त कर दे और शुभ कर्म रूपी खेती न करके पुण्य रूपी बीज न रक्खेंगे जो अगले जन्म में दुःख भोगना

पड़ेगा। शुभ कर्म करने से ही सुखी हो सकते हैं जैसे कोई आलस्य वश दीपक रूपी कर्म न जलाए और अँधेरे कमरे में ठोकर खाये।

सुमरि पवन सुत पावन नामू।
अपने वस करि राखे रामू॥

केवल नाम जपने से ही हनुमान जी ने जगत के मालिक एक को अपने वश में कर रक्खा जैसे कोई पिता अपने बालक को अपने आधीन रखता है।

वारि मथे धृत होय, सिकता ते बरु तेल।
बिन हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

पानी मथने से भले ही घी निकल आये। बालू पेलने से तेल किन्तु बिना हरि भजन के भव सागर से पार नहीं उतर सकते।

भव सागर—संसार में भव सागर का अर्थ यह लगाते हैं कि मरने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती यानी चौरासी लाख योनियों का भोग भोगना पड़ता है।

नाम प्रकाश पुस्तक में लिखा है—कि जो मांस खाते हैं वह मुर्दा खाते हैं क्योंकि जैसे मनुष्य उसी रक्त और बूँद से दस महीने बाद उत्पन्न होता है वैसे यह पशु भी माता-पिता से दस महीने बाद पैदा होता है इसका प्राण निकल जाता है तब मुर्दा कहते हैं। उसका प्राण निकाल दिया जाता है तब प्राण निकालने के पश्चात् या मरने के पश्चात् वह भी मुर्दा हो जाता है। तो इस दूधघी खाये मुर्दे को आप क्यों फेंक देते हैं। यह तो उससे भी अच्छा है इसको अवश्य खाना चाहिए।

लेकिन ज्ञान में यह कहा जाता है कि तुम यही हो अतः तुम्हारा भवसागर यही है। यानी अनेक झंझटों तथा मोह माया से छूट जाना ही भवसागर से जीते जी छूट जाना है।

राई को पर्वत करे, पर्वत राई मांहि।
अस समर्थ रघुनाथ की, क्यों न भजत मन ताहि ॥
यह कलिकाल मलायतन, मनकर देखि विचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि, नाहिन आन अधार ॥

इस कलियुग में प्रभु का पवित्र नाम तज कर और कोई दूसरा आधार नहीं है जिसके द्वारा पापों से बच जाते हैं।

आपके चाहे जितने बच्चे, हों चाहे विलायत में जाकर पढ़े हों अतुल धन हो, किन्तु बिना हरि नाम जप के परम सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह ऐसे दयालू प्रभु हैं जो अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी कर सकते हैं।

देवताओं में भेद नहीं है जिस नाम में आपकी रुचि एवं श्रद्धा है उस नाम को जपिये। जो भी जिस भी नाम को जपें किन्तु जहाँ तक हो दस दोषों से बचकर रहें।

नाम जप को पवित्र भाव से जपना आवश्यक है क्योंकि हृदय की शुद्धि ज्ञान के लिये परमावश्यक है। मेरे इस कथन को आप लोगों ने अवश्य हृदय में धरा होगा। यह कोई कथा नहीं है बल्कि यह सत्य है। किसी ने कभी यदि सन्त का दर्शन नहीं किया हो, यदि मरने पर भी उसकी लाश को संत का दर्शन हो जाय तो फल मिलेगा।

एक किसी बड़े घर की लाश थी, वह मुर्दे घाट पर जलाई जा रही थी इतने में एक महात्मा जी वहाँ पहुँच गये थे। उस घर

वालों को विकलात देखकर उनकी पत्नी को उन्होंने नामोपदेश दिया। लोगों ने तर्क किया कि मृतक में जब तुम्हारा पति गया है कहीं नाम जपा जाता है? अपने पति के विरह से व्यथित वह पतिव्रता बोली, मेरी शान्ति तथा उसकी शान्ति के लिए यही समय जपने का उपयुक्त है। और महात्मा जी को बुलाकर प्रमाणिक सिद्ध किया।

अज्ञान में जो चीज मृत्यु देने वाला है ज्ञान में वही ताक़त देने वाला है। गुण स्वभाव हमारा भिन्न-भिन्न है इसलिये ईश्वर मनुष्य, पशु-पौधे अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं किन्तु है नहीं। व्यवहार से दो मानकर मर्यादा से चलना दूसरी बात है। हृदय से अज्ञानी होकर मानकर चलना दूसरी बात है। हम ईश्वर भाव से किसी की भी उपासना कर सकते हैं यह गलत नहीं है क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं। किन्तु वाह्य रूप से गुण भी हो तब ठीक है।

सब घट मेरा साँइयाँ, सूना घट नहीं कोय।
बलिहारी उस घट की, जा घर पर घट हाय ॥

सब घट में सांई होते हुए भी जिस घर में प्रगट हो जाते हैं उसी से हम कृतार्थ होते हैं, बलिहार होते हैं।

गंगा का सभी किनारा पवित्र है किन्तु जहाँ मन्दिर हो, पेड़ हो, पवित्र साफ हो वह अधिक उत्तम विश्राम योग्य समझा जाता है। सभी घट में ईश्वर है किन्तु जिसमें प्रगट हो गया वह पूजनीय है।

क्यों भूले भगवान रे मन
जी तू चाहें पार उतरना, भजले सीताराम रे

जो तू गुरु आज्ञा मानेगा, उस पर चलेगा वहीं सब कुछ प्राप्त कर सकेगा।

पुरुषार्थ करते हुये भी लोग असफल हो जाते हैं। जन्म-जन्म से माला जपते हुये अँगुली घिस गई और उसमें फोटका पड़ गये किन्तु कुछ नहीं प्राप्त कर सके। दीपक जलाये फिर भी अँधेरा रहे यह बड़े आश्चर्य की बात है। कहीं दीपक जलने पर अँधेरा होता है? किन्तु नाम जपकर दरिद्र बना रहे उसका क्या कारण? अध्यात्म केन्द्र का क्या दोष? पहले आप सब कुछ पाने के लिये तथा अपने किये का फल पाने के लिये नाम दोष से बचिये। पथ्य करिये फिर औषधि का फल देखिए क्या नतीजा होता है। जहां सतगुरु हैं वहाँ अवगुण नहीं है जहाँ अवगुण है वहाँ सतगुरु पूर्ण रूप से नहीं रह सकता। परस्पर दो विपरीत वस्तु एक स्थान पर नहीं रह सकतीं।

अपने में विश्वास रखकर बढ़ना चाहिये यह भाव लेकर सदैव बढ़ना चाहिये की हम भी वही स्वरूप हो जायेंगे। फिर छोटी-छोटी वस्तु की हमको ज्ञान हो सकेगा अथवा नहीं? कितनी छोटी वस्तु है। पारस हमको सोना ही बनायेगा फिर ईश्वर भला हमको अपने समान नहीं करेंगे।

अब इस प्रश्न का तात्पर्य है कि सूरज के प्रकाश में बैठे हुये भी अँधेरे में क्यों?

शक्तिशाली होते हुये भी निर्बल क्यों? एक कोई देवी की प्रतिमा है। अपने मित्र तथा सहयोगी जन वहाँ आ गये सबने पुष्प चढ़ाया, किसी ने कमल का फूल भी चढ़ाया पर किसी ने गुड़ तथा चना नहीं चढ़ाया। लेकिन चढ़ाया तो सबने चाहे पुष्प ही चढ़ाया। इसी प्रकार खाना चाहे पीछे से घुमाकर खाये चाहे सीधे सामने से खाये पर खाना तो दोनों ही हुआ। इसी प्रकार

किसी भी समस्या या प्रश्न का समाधान या उत्तर सीधे से देना चाहिए जो सरलता से समझा जाय। जो प्रश्न पूछता है उसी की तरह हृदय बना लो जैसे कौड़ी खेलने वाला अपना निशाना ठीक बनाता है वैसे ही अपना उत्तर देने का ठीक तरीका, ठीक लक्ष्य पर रहे। जो इसे नहीं जानता वह अपने इसी कौड़ी खेलने वालों की संगत में रहकर वैसा बन जाता है।

सतगुरु का रास्ता ही एक अलग है वह किसी का खन्डन-मन्डन नहीं करता। हमारे ही शास्त्र भ्रम में डालने वाली बात लिखते हैं कि विभिन्न देवता की विभिन्न भाँति से पूजा करनी चाहिये। दूसरा शास्त्र अद्वैत का पाठ पढ़ाता है।

माया के बाजार में ईश्वर अपनी भक्ति के लिये भेजता है वह यहाँ की चकमक में लग जाता है। जैसे कोई आलू लेने के लिये बाजार भेजा जाय और वह वहीं बाजार में कंघी साबुन की दूकान में ही फँस जाय इसी प्रकार है। पंच जाल की बात करना, पंच ज्ञान में पड़ने वालों को सत्य ज्ञान सिखाना पड़ता है। शीशे के ढक्कन के सदृश हममें प्रकाश जल रहा है और हमारा प्रकाश सारे संसार में फैला है किन्तु उसके अन्दर जैसे अँधेरा रहता है वैसे ही हमारे में है। सूर्य के प्रकाश से अँधेरा धीरे-धीरे भाग जाता है। जब हम स्वयं प्रकाश में हैं तो अँधेरा कैसा ?

ज्ञान मिलने से क्या हुआ ? यदि अवगुण नहीं छोड़ा।

ज्ञान यज्ञ ही सबसे बड़ा यज्ञ है। घी का यज्ञ कोई यज्ञ नहीं है। आत्म ज्ञान सुनने पर भी यदि अपना लाभ न कर पाये तो क्या ? दूसरों को कम से कम उस ज्ञान को सुना देते तो उसका उद्धार हो जाता।

गीता के माहात्म में आया है कि ब्रह्म ज्ञान से एक राक्षस को कई जन्मों का स्मरण आने पर उसने स्वयं का तथा कई भूत योनी को मुक्त किया। कोई अन्नदाता किसी आलसी को बार-बार पत्तल में खाना परस देता है किन्तु वह आलसी चिड़िया कुत्ता को न हका कर बार-बार उन्हीं पक्षियों को खिला देता है तो वह अन्नदाता क्या करे ?

इसी प्रकार ईश्वर ने सतगुणों को दिया उसको प्रयोग में न लाए तो वह क्या करे ? यों कहोतो कौन श्रोता कौन वक्ता, सब लीला मात्र है।

श्री गुरुदेव भगवान की जै।

प्रश्न—संसार में गुरु के बिना सब कार्य चल सकता है या नहीं ? आवश्यकता हो तो किस प्रकार के गुरु की हो ?

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

गुरु ब्र्ह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

———

गुरुदेव भगवान की जै

सीता राम सीता राम, सीता राम सीताराम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

हमारे लिए गुरु की परमावश्यकता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। जीव जब गर्भ में या उसके पूर्व ही वह गुरु यानी ईश्वर को धारण कर चुका है किन्तु यहाँ आकर वह उनको भूल जाता है किन्तु धारण पहले ही कर चुका था।

मुख्य गुरु सात प्रकार के होते हैं।

१—धाय—यह प्रथम गुरु है क्योंकि सर्व प्रथम मल-मूत्र त्याग स्तन पान की शिक्षा देती है।

२—माता-पिता—

३—संस्कार विधि कराने वाले—

४—कुल गुरु

५—शिक्षा गुरु

६—सदाचारी मार्ग पर ले जाने वाले दीक्षा गुरु—

७—निज स्वरूप की प्राप्ति कराने वाला सद्‌गुरु—यही सर्वोपरि हैं। सद्‌गुरु यदि प्राप्त हो जांय तो सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यह कैसे प्राप्त होंगे ?

आकल्पजन्मनः कोट्यां यज्ञः व्रत तपः क्रियाः ।
तत्सर्व सफलं देवि गुरु सन्तोष मात्रतः ॥

जब आप गुरु के तत् स्वरूप यानी आपका हृदय उनका हृदय बन जायेगा तभी उनको प्रसन्नता होगी। जब दो व्यक्तियों का स्वभाव मिलता है तभी परस्पर में मित्रता हो सकती है इसी प्रकार बहुत जन्मों के पुण्य के फलस्वरूप सद्गुरु की प्राप्ति होती है फिर उनके अनूकूल बन जाने पर वह पसन्द होंगे।

जितने चिड़ियाँ उड़े अकासा ।
दाना है पृथ्वी के पासा ॥

चिड़िया चाहे कितनी ही ऊँचे उड़े किन्तु जीवन यापन करने के लिए भूमि के पास आना ही पड़ेगा। इसी प्रकार मानव जीवन के लिए चाहे वह कितना ही गुणवान रूपवान हो किन्तु गुरु के बिना काम नहीं चलेगा। गर्भ से ही गुरु रक्षा करता है। संसार ने गुरु को नहीं धारण किया बल्कि गुरु ने विश्व को धारण कर रक्खा है।

कहाँ मिले सुख शान्ति रे
मन गुरु शरणे में गया नहीं तो !

गुरु से रहित संसार में कोई वस्तु हुई नहीं फिर आप गुरु से दूर कहाँ जा सकती हैं। कहा है—नैमिषारण्य क्षेत्र में ८८ हजार ऋषियों ने श्री सूत जी से पूछा यह सोच कर— "कि हमारे हृदय में पूर्ण रूप से शान्ति नहीं है, शान्ति होती भी है तो थोड़ी देर के लिए तथा सस्वरूप का भी ज्ञान नहीं है।" हे प्रभो आप गुरु की महिमा करो हम इसलिए पूछते हैं कि अधिकारी पुरुष ही गुरु की महिमा सुना सकते हैं—

आचार्यवान्हि पुरुषों वेदेत्यादि श्रुतिर्जगौ ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन गुरु महात्म वद प्रभो ॥

इधर शंकर जी से पार्वती जी पूछती हैं—

केनमार्गेण भोः स्वामिन देही ब्रह्ममयो भवेत

अर्थात् हे जगत के स्वामी कौन से मार्ग से जीव ब्रह्म मय हो जाता है।

यस्य देवे परभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कविता हार्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥

गुरु और ईश्वर में कोई भिन्नता नहीं है दोनों एक ही वस्तु हैं। भक्ति दो प्रकार की होती है—

१. पराभक्ति

२. अपराभक्ति

जिस प्रकार परमात्मा की भक्ति होती है उसी प्रकार गुरु की भी पराभक्ति होती है। जिस प्रकार देवी देवताओं की पूजा होती है उसी प्रकार गुरु की भी होनी चाहिए। गुरु की तो शास्त्रों में यहाँ तक महिमा कही गई है—

———

ते धान्याश्च कृतार्थंश्च सफलं देह धारणम ।
उद्धतं च कुलं तैस्तु ये गुरुं समुपासते ॥

आपने यह पहले ही जाना है कि आत्मा अखंड है, अभिन्न है । इसके अनुसार भी गुरु उस आत्मा से भिन्न नहीं हैं । चतुर मनुष्य गुरु के वाक्य से ही गुरु को पकड़ता है । इसी प्रकार ज्ञान के वाक्यों से ही तत्व निकाला जाता है ।

गुरु सेवा परं तीर्थमन्य तीर्थं निरर्थकम् ।
सर्व तीर्थानि देविश सद्गुरु शरणां शरणंम्बुजे ॥

यह श्लोक कोई मंत्र देने के लिए मंत्र देने वाले गुरु ने नहीं बनाया है । यह रूप वाक्य अनादि काल से चला आ रहा है ।

अखंड मंडलाकारं व्याप्तयेन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

सिद्ध महापुरुष भागवत सप्ताह आदि जो कर्म काण्ड विषयक कर्म लगाते हैं वह अपने लिए नहीं, वह समाज के उद्धार के लिए लगाते हैं । सद्गुरु तत्व कोई खंडन मंडन का विषय नहीं है सभी मार्ग सभी मतमतान्तर एक ही हैं क्योंकि एक न एक दिन सभी वहीं पहुँचते हैं किन्तु कोई सीधा पथ है कोई टेढ़ा । जब स्वयं वहाँ पहुँच जायेंगे तब सब समझ जायेंगे । लेकिन टेढ़े रास्ते से जाने में देर लगेगी सीधे रास्ते से शीघ्रता से पहुँचोगे । पुरुषार्थ से पहुँचना एक वस्तु है, चालाकी से पहुँचना एक वस्तु है और आलसी की तरह पड़े रहना दूसरी वस्तु है । ईश्वर के यहाँ पहुँचने के अनेक मार्ग हैं । मंजिल वही एक है अपनी-अपनी बुद्धि से, विचार से अलग-अलग मार्ग है ।

गुरु भी कैसे हों—

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं ओंमातीतं निरंजनम् ।
बिन्दु नाद कलातीतं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

चैतन्य शाश्वत शांत आकाश के समान, माया रहित, बिन्दु नाद कला से अतीत—इसके अतिरिक्त—

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं ।
द्वन्दातीतं गगन सदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥

मेरे भगवान गुरुदेव कहते थे कि गुरुदेव ने तत्व की एक ऐसी माला धारण कर रक्खी है जिसको कोई नहीं देख सकता ।

गुरुदेव कहते थे यह तत्व माला ज्ञान दृष्टि से ही दृष्टि-गोचर हो सकती है । अर्जुन को प्रभू ने जब दिव्य दृष्टि दी थी तभी वह उनका विशाल स्वरूप देख सके ।

ज्ञान शक्ति समारुढ़ तत्व माला विभूषितम् ।
भुक्ति मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

इसीलिए कहा है—

ध्यान मूलं गुरु मूर्तिं पूजा मूलं गुरु पदम् ।
मंत्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्ष मूलम् गुरु कृपा ॥

सर्व प्रथम पांच वर्ष के बालक को पानी भरने के लिए एक छोटी सी बाल्टी देंगे । ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जायगा वैसे ही

उसे बड़ा पात्र देंगे। इसी प्रकार आप अपनी मंजिल (Goal) की ओर जैसे-जैसे बढ़ती जायेंगी वैसे-वैसे साधन (Means) भी बढ़ते जायेंगे। जितना बड़ा पात्र होगा उतना ही जल भर सकेंगे।

गुरु आज्ञा का पालन ही सब कुछ है, वही सेवा है वही भक्ति और ज्ञान है। किन्तु विशेष तौर से देखा जाता है कि अपने अनुकूल जो होता है वह तो स्वीकार कर लिया जाता है और प्रतिकूल अस्वीकृत कर दिया जाता है। गृहस्थ्य में पति पत्नी में भी यही बात देखी जाती है। स्त्री पति की आज्ञा वहीं तक मानती है जो उसके अनूकूल है जरा सा वेमन की बात हुई फिर आज्ञा-पालन तथा पति भक्ति खतम हो जाती है।

ज्ञान में तो कोई गुरु शिष्य है ही नहीं। किन्तु व्यवहार में तो बात करनी ही पड़ती है। कहते हैं गुरु के शरीर की रचना तो पक्के तत्व की होती है और अन्य चीजों की कच्चे तत्व की।

जो निष्ठा के पूर्ण, त्यागी और बैरागी होते होंगे वही उनकी आज्ञा-पालन कर सकते होंगे।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरु देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

गुरु को साक्षात् ईश्वर मानने वाले कोई बिरले ही होते हैं। भक्ति सागर में कहा है आप पहले अपने आप को मिटाइये, जब तक आपा नहीं मिटेगी तब तक निष्ठा पूर्ण नहीं हो पावेगी। जो गुरु को साक्षात् ब्रह्म समझते हैं वही उनकी आज्ञा का पालन कर सकते हैं। जो उनकी पूर्ण रूप से भक्ति करते हैं उनके भाग्य पुष्प के उदय होते हैं और गुरु भी उन्हें राजा जनक की

तरह विदेह जिन्दे जी कर देते हैं। करने वाले जिज्ञासु पुरुषार्थी सत्यवादी के लिए जिन्दे जी मुक्त होना कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि कहा है—

गुरु कृपा प्रसादेन स्वात्मा रामोहि लभ्यते

गुरु सेवा के द्वारा पूर्ण दया पाने पर क्या नहीं हो सकता। यदि गुरु में सत्य निष्ठा है तो सब कुछ प्राप्त हो सकता है। एक सेठानी जी थीं, वह ईश्वर की परमभक्ति थीं और गुरु जिज्ञासु भी थीं। सेठ जी बहुत लोभी थे। सेठानीजी की सरलता और भक्ति को सभी नगर वासी जानते थे। इनकी महत्ता को सुनकर एक बदमाश साधु वेष धारण करके आया और सेठानी जी का गुरु बन गया। तत्पश्चात् सेठानी जी को अपने संग तीर्थ चलने को कहा। गुरु आज्ञा को सर्वोपरि समझकर सेठ जी से आज्ञा मांग कर धन सम्पत्ति लेकर सेठानी जी यात्रा के लिए निकल पड़ीं। मार्ग में सेठानी जी को प्यास लगी। वह कुएँ में पानी के लिए गई गुरु ने जाकर धन के लोभ वश सेठानी जी को कुएँ में गिरा दिया। किन्तु सेठानी जी की प्रबल निष्ठा वह गुरुदेव गुरुदेव चिल्लाने लगी। भक्त वत्सल भगवान भक्तों की मर्यादा रखने के लिये आये औह सेठानी जी को निकालने लगे। सेठानी जी ने कहा, तुम कौन बदमाश हो? मेरे गुरु को बुलाओ तब कुएँ से बाहर आयेंगी अंत में भगवान को उस बदमाश को बुलाना पड़ा एवं उसको सद्बुद्धि दी जिससे भविष्य में धोखा न दे। जब हमारे ऊपर परमात्मा की कृपा होने लगती है तब अधिकाधिक वैराग्य त्याग प्रभु के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है जैसे जब हम नैनी-ताल जाँय तो ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों ठंडक महसूस होने लगेगी।

भगवान न स्वयं चैन से रहते हैं न भक्तों को ही रहने देते हैं। मीरा जी वृन्दावन गुप्त रूप से गई थीं किन्तु वहाँ पहुँचते

ही उन्होंने ढोल पीट कर उनका नाम करा दिया। सतगुरु न भी मिले तो सेठानी की तरह अगुरु में भी निष्ठा रख कर हम पूजनीय बन कर भवसागर से पार हो जाते हैं।

अपने आप को जानना ही प्रत्येक प्रकार के सुख की सीमा तथा कल्याण जाना और माना जाता है। यदि कोई कहे किस प्रकार से अपने आप को जाने ? धर्म-कर्म, ज्ञान के द्वारा अपने को जानो। यदि आप कहें हम इतने धर्म कर्म करते हुए भी अपने आप को न जान पाये ? यह तो वही बात है उजाले में अंधेरा कैसा ? यदि आप उस ज्ञान को प्रकाश में नहीं लायेंगे तो फिर गुरु क्या करे।

संसार की समस्त पंचायत या कहिये भ्रम जाल छुड़ाने के लिए ही सद्गुरु होते हैं। सद्गुरु तो आकाशवत निर्मल द्वन्द रहित है इन्हीं सब द्वन्दों एवं पंचायतों से मुक्त करने के लिए ही वह चैतन्य स्वरूप सद्गुरु हैं। उनका नाम गुरु ही क्यों पड़ा ? बादशाह या और कुछ नाम उनका रख देते।

गुकारम् धकारोस्ति रूकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रसकं ब्रह्म गुरुदेव न सशयः ॥

गु शव्द अज्ञान का वाचक है।
रु शव्द प्रकाश का वाचक है।

प्रकाश में लाकर जो अंधकार को मिटा दे वही गुरू है यानी अज्ञान को मिटा कर ज्ञान में ला दे।

गुकारः प्रथमोवर्णो मायादि गणभासकः ।
रूकारो द्वितीयो ब्रह्म माया भ्रान्ति विमोचकः ॥

गु प्रथम वर्ण माया का भास कराने वाला है रु द्वितीय वर्ण भ्रम माया आदि का नाश या मिटाने वाला है इसीलिए जो द्वन्दों से अतीत माया से रहित है वह गुरु कहलाता है।

गुरु में शक्ति है तत्व है इसमें रहस्य है। यह नाम अर्थ सहित है। सद्गुरु निज स्वरूप का बोध करा देते हैं। शनैः-शनैः हम गुरु के पास पहुँचते हैं। आप चाहे जितना शास्त्र वेद द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत पढ़ जाएँ लेकिन किसी से भी निज स्वरूप का बोध न होगा। गुरु ही सब भेद तथा द्वैत को मिटा कर निज स्वरूप का बोध करा देते हैं। तिल जौ चावल के यज्ञ के फल से तथा अनेकों पुण्य के फल से गुरु की प्राप्ति होती है। ज्ञान यज्ञ ही प्रमुख यज्ञ है यहाँ यह बात प्रसंग वश बता देनी आवश्यक है। ज्ञान प्राप्त करके सस्वरूप पर स्थित हो जाने के पश्चात् हम लौकिक रीति करें या न करें हमारे ऊपर निर्भर है। सभी एक ही रास्ते पर चलें या गुफा वास करे तो काम न चल सकेगा जैसे आलू किसी को अच्छा लगता है भाँटा किसी को यह तो अपनी अपनी पसन्द हैं सभी अच्छा है वशिष्ठ जी जनक जी राम जी कृष्ण जी, शुकदेव जी यह सब एक ही श्रेणी में गिने गये हैं। लक्ष्य इन सबका एक था, ज्ञान एक था। किन्तु मार्ग अलग-अलग थे। हम लोगों को तो मनुष्य की पहचान में समय लगता है किन्तु सतगुरु तुरन्त ही बता देते हैं कि यह जीव है, माया, ब्रह्म है कि गुरु—

परा, पष्यन्ति, मध्यमा, बैखरी—

गुरु जीव की पहचान तत्काल उसकी बोली से ही कर लेते हैं।

पढ़त-पढ़त पत्थर भये लिखत-लिखत बिल्लोर।
जा मिलने से सांईं मिले, वह पढ़ना कछु और॥

हमको इधर-उधर की बातों से क्या लाभ सीधे-सीधे ईश्वर जानने से मतलब। प्रभू राम जो स्वयं ज्ञान के मालिक थे उनको क्यों वशिष्ठ जी को गुरु बनाना पड़ा। लेकिन लोक मर्यादा, व्यवहार नियम को रखने के लिए आखिर प्रभु ने गुरु बनाकर निज शक्ति की प्राप्ति की। यों ही तुम स्वयं सच्चिदानन्द आत्मा हो, स्वयं अच्छी बातों को ग्रहण करके उस पर चलने की कोशिश करिये।

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः॥

प्रश्न भगवत मार्ग में सर्व प्रथम किस वस्तु को करने की आवश्यकता है ?

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ नारायण वासुदेवा

श्री कृष्ण भगवान की जय !

———

श्री गुरुवेनमः

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम

पूर्व प्रश्न यही था कि भगवान मार्ग में सर्व प्रथम किस वस्तु की आवश्यकता है ?

सबने अपने-अपने मतानुसार लिखा है जैसे अपने रोज नित्य जाने का एक मन्दिर है। उस मन्दिर में पहुँचने के कई मार्ग होते हैं किन्तु कोई एक खास रास्ता भी होगा जिससे मन्दिर में मोटर जाय। सबका जाना सत्य और ठीक है जैसे अध्यात्म केन्द्र की शिक्षा में आप लोग सब अनेक हैं किन्तु खास ही कुछ सदस्य हैं। सदस्यों पर भी प्रमुख सदस्य होता होगा। इसी प्रकार सभी मार्ग में भी कोई प्रमुख मार्ग होगा। इस मानव समाज में रहकर हमको अवश्य ही सब बातें जान समझ लेना चाहिये। प्रत्येक गुण में परिपूर्ण होना चाहिये। हमारी और अन्यों की आत्मा एक ही है। उसके माता - पिता हमारे एक ही हैं, दोनों की रचना करने वाला एक ही है। फिर हम किसी से कम बने बैठे रहें। हमारे में पुरुषार्थ नहीं अज्ञानता है इसीलिये हममें और उसमें अन्तर है। हम भी पहुँचे हुये महात्मा की तरह पुरुषार्थ और तपस्या करें तो वैसे ही बन जायेंगे। जैसे कोई द्रोपती घाट जाना चाहे तो आप फूल चन्द की बगिया वाला रास्ता मत कहिये जो सीधी सरल तथा खास सड़क हो उसी को बता दीजिये। हम लोगों ने अज्ञानता के कारण अपने को एक छोटी सी सीमित शक्ति के अन्दर बाँध रखा है। इसीलिए हम दाल भात रोटी तक ही काम कर सकते हैं एवम् उतनी ही

शक्ति रखते हैं। किन्तु वह मीरा जो आप जैसी थी अवतारी कहलायीं। अपनी तपस्या तथा पुरुषार्थ के कारण विष भी उनके लिये अमृत हो गया। यह थी उनकी जागृत शक्ति। जैसे कोई एक बहुत बड़ा खेत है उसमें बहुत सी राई और सरसों छींट दी गई हैं और उस पर ध्यान नहीं दिया गया तो उतनी सरसों छींटने से क्या लाभ? उसी प्रकार सत्सङ्ग में गये और बहुत सा ज्ञान दिया गया और उस पर हम ध्यान न दें तो जाने का क्या लाभ?

सूखी दियासलाई जलाओ, तिनके में लगा दो वह ऐसा विशाल रूप से जलेगा कि बड़े से बड़ा नगर जला देगा और अगर भीगा रहेगा तो चाहे लाख कोशिश करो उसमें कुछ यत्न करना पड़ेगा और फिर बहुत प्रयत्न के बाद जलेगा भी तो तेज नहीं। इतना करने वाला भी तो हो?

गुरु बिना संसार में और न दीखे कोय।
नाम जपे पातक नासे ध्यान धरे हरि होय॥

हमारे पास जमीन हो और उसमें बोने के लिये बीज न हो तो व्यर्थ है बीज हो जमीन न हो तो बीज का होना व्यर्थ है। दोनों की समान आवश्यकता है।

को बड़ छोट कहत अपराधू।
सुनहि समुझहिं सज्जन साधू॥

राम बड़े हैं या कृष्ण इसको हम क्या कहें। इस भगवत मार्ग में किसी भी एक साधन को प्रमुख मान लो। ये तो साधन सब ही ठीक हैं किन्तु स्वयं सद्‌गुरु के द्वारा जो महावाक्य कहा गया है—

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा
देवल तीरथ बटु मग धावहिं
साधु संगत बिनु गति नहीं पावहिं

चाहे कितने भी काशी वृन्दावन दौड़ो किन्तु बिना सद्गुरु के समागम के गति नहीं प्राप्त हो हक्ती।

ठौर-ठौर के पानी सुरसरि मिल भई गंगा रानी

यानी जैसे जगह-जगह का पानी चाहे गन्दा हो चाहे साफ हो गंगा जी में यदि मिल जाय तो वह गंगा स्वरूप में बदल जाता है और गंगा जी के नाम से कहलाने लगता है। वैसे ही चाहे कोई जैसा भी हो महापुरुष के संग से वह महापुरुष ही कहलाता है भक्त के यहाँ यदि कोई चोर भी आकर सत्संग में बैठे तो वह भक्त ही कहलायेगा चोर नहीं कहलायेगा उस सत्संग में यदि भक्तों को सच्चिदानन्द कहा जाता होगा तो उसको भी यही कहा जायेगा।

ढाका पाता पान के साथा। संगत मिल गई भूपन हाथा

ढाक का पत्ता पान के पत्ते के साथ राजा के यहाँ हाथ में चला जाता है मिश्री के साथ धागा भी जो उसमें लिपटा रहता है मुँह में चला जाता है।

१—प्रथम भक्ति सन्तन कर सङ्गा दूजे रति मम कथा प्रसंगा

पहली भक्ति और कुछ बता देते सन्तों का संग ही प्रथम भक्ति क्यों बताया? अपनी बुद्धि रूपी मथानी से मथकर समझिये गुरु ही मार्ग दर्शक और तत्व के प्रगट कर्त्ता हैं। सत्संग और कथा दो वस्तु हैं यदि सत्संग और कथा एक ही वस्तु होता तो प्रभू उसको —

२—"दूजे रति मम कथा प्रसङ्गा" न कहते । सत्सङ्ग का आशय ज्ञान से है ।

३—श्री गुरू पद पंकज तीसरि भक्ति अमान ।
४—चौथी भक्ति मम गुण गण करहिं कपट तजि गान ॥
५—मंत्र जप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ।
६—षट दमशील विरत बहु कर्मा, निरत निरंजन सज्जन धर्म्मा
७—सप्तम मोहिं मय जग देखे, मोसे अधिक संतकर लेखे ।

"और ज्ञान अज्ञान है ब्रह्म ज्ञान सोइ ज्ञान ।"
"जैसे गोला तोप का करत जात मैदान ॥"

किन्तु यहाँ पर ब्रह्म ज्ञान को प्रथम नहीं बताया है "सन्तन कर सङ्गा" बताया है क्योंकि उसी सङ्गत के द्वारा हम कौन है ? कहाँ से आये हैं ? आदि इसी के द्वारा समझेंगे ।

जितने भी व्रत उपवास धर्म कर्म हैं वह सब निष्फल नहीं हैं उनके फलस्वरूप सद्‌गुरु की प्राप्ति होगी । अनेक जन्मों के पुण्य से सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है । सतकर्म से ही गुरु का दर्शन होगा किन्तु गुरु प्राप्त होने से क्या ? इसका सत्संग करना चाहिये । एक व्यक्ति था । कहीं जा रहा था मार्ग में अचानक ही दो-चार व्यक्तियों ने आकर उसे माला पहनाया । इसने उनको आशीर्वाद दिया । फिर वह और आगे बढ़ा दो-चार व्यक्ति उसे मिले और उन लोगों ने उस पर थूक दिया । यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ? उसने जाकर यह सब अपने गुरु से बताया और कारण पूछा कि "एक स्थान पर तो मेरी पूजा हुई और दूसरे स्थान पर थूका गया" ऐसा क्यों ? गुरुदेव ने उत्तर देते हुये बताया, पुण्य

के फलस्वरूप माला प्राप्त हुई पाप के फलस्वरूप थूक। अतः तुमको दोनों परिस्थिति में प्रसन्न रहना चाहिये। इसी प्रकार एक पुण्य के फ़लस्वरूप सद्गुरु मिलते हैं उससे कुछ अधिक पुण्य के फलस्वरूप उनका सङ्ग मिलता है।

विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने लिख दिया है कि एक खाईं से निकल कर आओगे यदि ज्ञान न होगा तो दूसरी खाईं में गिर जाओगे। कितने महापुरुषों की कृपा से उस भवजाल के बन्धनों से निकले किन्तु यहाँ अनेक मत मतान्तर तथा पंच जाल है। ज्ञान न हुआ तो इसी पञ्च जाल में फँस जायेंगे। शिव गनेश विष्णु में भेद बुद्धि रखकर अज्ञान में पड़े रहते हैं क्योंकि आत्म चिन्तन तो किया नहीं। यानी जो लक्ष्य है उसको तो जाना नहीं। जैसे किसी निर्धन के पास धन हो गया हो तो वह अनेक प्रकार रहन-सहन खान-पान दिखाता है कि अब हम धनी हो गए हैं इसी प्रकार आत्मधन हो जाने हर भक्तों की यही गति होती हैं जैसे बच्चा माँ के बिना बुलाये ही दौड़कर उसके पास चला जाता है। चुम्बक के पास लोहा स्वयं चला जाता है इसी प्रकार सतगुरु का सतसंग आत्म चिन्तन स्वतः ही आत्मशक्ति प्राप्त करा देती है उसको कहना नहीं पड़ता।

सातवीं भक्ति "मोहि मय जग दीखे" मोसे अधिक सन्तकर लेखे—प्रभु ने कितनी चतुराई से खोलकर रखा है कि "मोसे अधिक संत कर लेखे"—इस वचन से भी आप जान सकते हैं कि सत्संग कितनी बड़ी वस्तु है।

प्रमाण—एक बड़ा ही धनी सेठ था। उसके चार पुत्र थे, एक धर्मपत्नी तथा स्वयं यानी घर में छः प्राणी थे। वह भोगविलास में निरत रहता था ("भगवान श्याम सुन्दर ने गीता में क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र के अलग-अलग धर्म बताये हैं जिसको स्वधर्म

के नाम से सम्बोधित किया है," विशेष तौर से देखा भी जाता है जो वैश्य दान धर्म करता है वही सफलीभूत भी होता है किन्तु यह सेठ अपने ही परिवार में व्यय करता था इसके अतिरिक्त धर्म के नाते वह एक पैसा भी खर्च नहीं करता था। थोड़े दिन पश्चात् सेठ जी बहुत बीमार पड़े और जीवन समाप्ति का दिन आ गया। अब उसने इच्छित भोजन किया एवं लड़कों को बुला कर कहा—प्रथम सन्त महात्मा के पास कभी न जाना। द्वितीय दान धर्म न करना। झूठ चोरी व्यभिचार आदि करना। करने वाले कार्य को न करना तथा न करने वाले कार्य को करने की शिक्षा दी - मरने के तेरह दिन बाद ही धन चार हिस्से में बाँटा गया और सब अलग अलग रहने लगे। एक दिन छोटे लड़के ने सोचा जिन चीजों को पिता जी ने मना किया है पहले उन बातों को देखूँ उनमें क्या खासियत है ? फिर सोचा नहीं-नहीं यदि उधर जाऊँ तो फिर कहीं ऐसा न हो कि उधर से लौटकर इधर न आ सकूं। एक दिन वह कहीं जा रहा था किसी ग्राम से होकर जाना था मार्ग में मन्दिर के सामने से निकलना पड़ता था जहाँ कथा सत्संग हो रहा था लड़के ने सोचा अब क्या करूँ बड़ा दुर्भाग्य हुआ इसीलिये वह दौड़कर जाने लगा कि कथा का शब्द उसके कान में न पड़े। किन्तु ज्यों ही दौड़ा ठीक मन्दिर के सामने उसके दोनों पैरों में बबूल के काँटे गड़ गये जिसके फलस्वरूप उसको वहां रुकना पड़ा। उसने सोचा शब्द यहां का कोई भी न सुनूं इसलिये कान में हाथ लगा लिया और एक हाथ से शीघ्र ही कांटा निकालने लगा इतने मेंही उसने सुना "ईश्वर की परछाई नहीं होती।" बड़ा ही परेशान था फिर आखिर सत्संग के शब्द मैंने सुन ही लिए फिर यह शब्द मुझे भूलता भी नहीं किन्तु उसकी पत्नी ने सांत्वना देते हुये समझा दिया जिससे उसे कुछ शान्ति मिली।

एक दिन उसने राजा के यहां चोरी की और सब कीमती अनमोल हीरे जवाहरात लाकर स्त्री को दिया और उसको गड्ढे में गाड़ कर रख दिया गया और स्त्री को समझाया कि तुम अपना स्त्री स्वभाव तजकर यह बात किसी से भी न कहना। यह कह कर देवी जी के मन्दिर में गया और देवी की मनौती मानी राजा ने सारे देश में ढोल पिटवा दी कि जो इस खजाने के चुराने वाले को पकड़ेगा उसे आधा धन दे देंगे। एक वैश्या को भी राजा ने बुलाया और इनाम देने को कहा अगर वह चोर का पता लगा देगी तो। उस वैश्या ने जोगी वेश बनाया और ग्राम में घूमने लगी उस चोर की चटकोरी औरत ने एक सुन्दर साधु को जाते देखकर बुलवाया और कहा भजन तो सुनाते जाओ, उसके लिये क्या भजन क्या गाना सुन्दर रागिनी में सुना दिया। भजन गा देने के बाद साधु जी ने कहा मुझे एक काम है तुम बना दोगी। चटकोरी ने कहा तुम्हें क्या दुःख है जोगिनी ने कहा मेरी बिधवा का इकलौता पुत्र है बहुत बीमार है यदि तुम्हारे पास ऊँट का मांस हो तो दे दो। ऊँट के मांस से यह अभिप्राय लगाया जाता है कि बड़ी-बड़ी चोरी का धन सुरक्षित रखने के लिये ऊँट का मांश वहाँ रख दिया जाता है। पहले तो चोर की स्त्री अनखनाई यानी देने में कुछ हिचक दिखाई लेकिन बाद में उस जोगिन की पेंचदार बात में आ गई और कहा कल १२ बजे दोपहर तक आना तो हम दे देंगे। जोगिन ने सब भेद पा लिया और उसके मकान में कुछ चिन्ह (निशान) बनाकर चली गयी। दूसरे दिन ठीक १२ बजे आ गई। चोर की स्त्री ने उसे ऊँट का माँस दे दिया इसके अलावा जोगिन ने उसके पति की दिनचर्य्या मालूम कर ली। ठीक मन्दिर में पहुँचने के समय वह वेषधारी जोगिन देवी की प्रतिमूर्ति बन कर ठीक देवी की प्रतिमा के पीछे छिप गयी और जब नित्य के सदृश वह समय

पर पहुँचा तब वह जोगिनी बनावटी आवाज में बोली, कल १२ बजे रात्रि में हम तुम्हारे यहाँ आयेंगे जहाँ चोरी का धन रखा है वहाँ पर गोबर से लीपकर पूजा का सामान ठीक करके रखना। उस चोर ने दूसरे दिन वैसा ही किया उस जोगन बनी हुयी वैश्या ने पूर्ण बनावटी वेष में अपने को काली सदृश बनाया। दम्पत्ति मिलकर देवी के मन्दिर में स्वागत के लिये गए और साक्षात् देवी मानकर पूजन भी किया। मसाल में जब बनी-देवी की परछाइं देखी तब वह समझ गया यह देवी नहीं है बल्कि मेरा काल है क्योंकि देवताओं में परछाइं नहीं होती। चोर सब बात समझ गया किन्तु जानकर भी वह बनी देवी की आज्ञा पालन कर रहा था। किन्तु चोर के हृदय में दारुण दुःख हो रहा था। सब कुछ करके उसने सोचा अब मेरा प्राण तो जा ही रहा है अतः मैं राजा से स्वयं ही न कह दूँ कि मैं ही चोर हूँ। अब उसने स्त्री से कहा, तुम देवी का स्वागत करो मैं मसाल जलाकर आता हूँ किन्तु सत्संग की बात उसे बराबर स्मरण रही कि यह देवी नहीं है क्योंकि इसके परछाइं है। रात्रि के ठीक १२ बजे वह दरबार में पहुँच गया और कातर होकर राजा को बुलाया जिससे राजा को उठकर आना ही पड़ा। चोर ने जीवन दान की भिक्षा माँगकर अपनी चोरी प्रकट कर दी, इस पर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और कहा, तुम इतने वीर हो कि इतने बड़े दरबार में तुमने चोरी करने का साहस किया और भय न मानकर तुमने सत्य कह दिया और राजकुमारी से विवाह करने की आज्ञा दी। किन्तु चोर के हृदय में उसी एक क्षण मन्दिर के सामने खड़े होने के फलस्वरूप मन में विरक्ति उत्पन्न हो गयी। उसने सोचा कि यह जरा सा सत्य बोलने तथा क्षण मात्र के सत्संग के फलस्वरूप मुझे इतनी बड़ी योग्य सामग्री प्राप्त हुयी। अब यदि सत्य में उस ईश्वर को भजूँ तो पता नहीं क्या फल

प्राप्त होगा। अतः उसके हृदय में अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ एवं राजा से जोगिया वस्त्र की प्रार्थना करते हुये राज्य न ग्रहण करके हरि भजन के लिये प्रार्थना की। किन्तु राजा ने कहा, मैं निःसन्तान हूँ किसी योग्य शासक की आवश्यकता है। तुम परम वैराग्य एवं प्रेम के साथ प्रजा का पालन करो इसी में तुम्हारा मोक्ष है इसीलिये कहा है—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

उसने वेमन से आज ईश्वर का नाम स्मरण किया उसका कितना बड़ा फल हुआ। प्रभु के नाम की महिमा कोई नहीं जान सकता। ईश्वर का तत्व बड़ा ही गूढ़ है छोटे २ धर्म-कर्म एवं तिल जौ के यज्ञ के फलस्वरूप ही ज्ञान यज्ञ की प्राप्ति होती है। जैसा कहा है—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँव।
बलिहारी उस गुरुकी, जिन गोविंद दियो बताय॥

इसका आशय यह नहीं है कि मेरे जिस गुरु के द्वारा मेरे प्यारे प्रभु मिले हैं वह छोटे हैं। जिसके द्वारा जो वस्तु मिले वह तो और भी बड़ी है। अच्छे धर्म-कर्म की शिक्षा देना प्रत्येक का कर्म है, कर्तव्य है।

प्रश्न—भगवान की सेवा तो सभी की सेवा है प्रमुख सेवा कौन सी है? सेवा क्या है?

श्री गुरुदेव भगवान की जै!

गुरु ब्रह्म गुरु विष्णु गुरु देवन के देवा।
सर्व सिद्धि फल देत गुरु, आपहि मुक्ति करेवा॥
गुरु केवट होय आप करी, करो भव सागर पारी।
जीव ब्रह्म कर देत हरो, आपही व्याधा हारी॥

श्री गुरुवेनमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ।।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

रामायण कल्पतरु जैसा एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। आप लोगों में लगभग सभी लोगों ने रामायण पाठ तथा नवाह्न, अखंड पाठ भी किया होगा और कुछ लोग तो सदैव ही पाठ करते होंगे किन्तु ध्यान उसके शब्दों पर नहीं देती—

बोले गुरु ऐसे अनुकूला, वचन मृदु मञ्जुल मूला।
नाथसकत पितु चरण होअऊ, भयऊ न भुवन भरत सम भाई

प्रभु प्रथम भरत जी की सराहना करते हैं कि भरत जी के समान तीनों लोक में भाई नहीं हुआ है—

विधि न सकहिं सहि मोर दुलारा।
नीच बीच जननी मिस पारा ।।

मेरे प्यार को विधि भी नहीं सह सकी जिसने मध्य में मेरी माता को बीच का बनाकर डाल दिया। कितना बड़ा त्याग, वैराग्य

भक्ति प्रेम भरत जी में होगा जो प्रभू उनको इतना प्यार करते थे कि विधि भी उनसे ईष्या करने लगी।

स्वार्थ नाथ फेरहू सबही का।
किये रजाई कोटि विधि नीका॥

जिस समय भरत जी चित्रकूट गये हैं वहाँ प्रभू से मिले, थोड़े दिन पश्चात् जब लौटने का समय हुआ तब वशिष्ठ जी ने उन्हीं के ऊपर छोड़ दिया कि जो इनकी इच्छा हो वही करें। भरत जी ने बहुत विचार किया तत्पश्चात् प्रभू से कहा—हे प्रभू अपने स्वार्थ से यह लौटने के लिये आपको कह रहे हैं किन्तु जो आप की आज्ञा हो वही इनको करना चाहिये क्योंकि इसमें इनका ही कल्याण है।

सहज सनेह स्वामी सेवकाई
... ...
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा

अर्थ धर्म काम मोक्ष की आकांक्षा छोड़कर आपकी सेवा करना ही सबसे बड़ी भक्ति है अर्थात् आज्ञा पालन ही मुख्य है इसीलिये हे नाथ आज्ञारूपी प्रसाद दीजिये मैं उसका पालन करूँगा। एक स्थान पर भरत जी ने और कहा है—"हे प्रभू मैं आपके चरणों की वन्दना करता हूँ। मेरी केवल एक रुचि है उसी को आप मुझे दे दीजिये। हे नाथ, आप मुझे जो आज्ञा दें वही मैं करूँ।

एक आज्ञा रूपी साधन से सब सिद्धियाँ मिलती हैं। यही सब जड़ों की जड़ है और सरल भी है—

एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।

यानी गुरु की आज्ञा पालन ही सब कुछ है। यह कहने में तो सरल है पर व्यवहार में अति कठिन है।

प्रत्यक्ष प्रमाण तो छोड़ दीजिये रामायण को ही ले लीजिये—झूठ न बोलो, क्रोध न करो, सदाचार पर चलो, जो इन गुणों के विपरीत हैं उनको इस पर चलना कितना कठिन है। गुरु की आज्ञा तो दूर रख दीजिये। आज्ञा रूपी साधन कठिन है किन्तु जो आज्ञा पर ही अन्धा बन जाय उसके लिये ही सरल है।

पतिव्रता वाँकू कहे, पति आज्ञा की टेक।
रामरूप सोई संत है, सुमिरे साहिब एक ॥

(भक्ति सागर)

नारी भी पति की आज्ञा वहीं तक मानती है जहाँ तक पति उसके अनुकूल होता है। ब्रह्म के समान यदि गुरु मिले तब भी यदि हम उसको नहीं मानते, नहीं समझते तो उसके लिए गुरु का होना न होना व्यर्थ है। पति की आज्ञा मानना तो फिर भी सरल है किन्तु इस पथ पर चलना तो कितना कठिन है। क्रोध न करिये, मोह न करिये, लोभ न करिये इन सब स्वभावों को त्यागना कितना कठिन है।

जीव से जीवत्व को छोड़ना उसी प्रकार कठिन है जैसे सने हुये आटे से आटे का पानी अलग करना। जैसा अन्तःकरण हम लेकर मरते हैं वैसा ही अन्तःकरण दूसरे जन्म में होता है। इसीलिये अन्तःकरण ही आप निर्मल बना लीजिये। बुरा भला दो हृदय होता है। जिसका हृदय जैसा होता है वह वैसा ही दूसरों को भी देखता है। अच्छे अन्तःकरण वाला बुरे अन्तःकरण वाले को नहीं पसन्द करेगा और न बुरे अन्तःकरण वाला अच्छे अंतःकरण वाले को। वह तो अपने समान ही चाहेगा किन्तु सद्गुरु

के सङ्ग जैसा भी अन्तःकरणवाला हो धीरे धीरे उनके आदेश पर चलने से उसी प्रकार हो जाता है। हम केवल आज्ञा पालन को ले लें। यदि सतगुरु साक्षात् में मिल जाँय एवं उनकी आज्ञा पालन करें तो उसी में हमारा कल्याण है।

पूर्व संस्कार जिनके पुण्यशील हैं उनके लिये आज्ञा रूपी साधन कोई कठिन नहीं है। हम लोग ठीक से आज्ञा पालन नहीं कर पाते अगर करें तो जिस मञ्जिल तक पहुँचना है पहुँच जायेंगे निश्चय जिसने अचल कर लिया है वह एक दिन पूर्णता को अवश्य प्राप्त होगा।

एक दिन भगवान श्याम सुन्दर कहीं एकांत में बैठकर आनन्द से नेत्र बन्द कर मुरली बजा रहे थे। बहुत देर से प्रभू से विलग होकर श्री राधा जी का हृदय विदीर्ण होने लगा उन्होंने सोचा प्रभू कहाँ चले गये यह सोचकर व्याकुल होकर वन की ओर निकल पड़ीं। श्याम २ पुकारती श्याम के पास पहुँच गईं। श्याम मुरली की धुन में खोये हुये थे। राधा जी श्याम सुन्दर के मुख को निहारती हुई उनके चरणों के पास बैठ गईं। प्रभू अन्तर्यामी थे वे समझ गये राधा जी ही आई हैं। उन्होंने नेत्र खोला राधा जी हाथ जोड़े बैठी थी और बड़ी गम्भीरता से पूछा, मुरली में ऐसा कौन सा गुण है जो आप इसे अधिक प्यार करते हैं। प्रभू ने कहा—यह हृदय की खाली है जो मैं कहता हूँ वही करती है। फिर इसने कितनी तपस्या की है एक पैर से खड़ी रहती है। फिर काटी, छेदी तथा तपाई जाती है।

एक दिन नारद जी को मोह हुआ कि साधन भक्ति नियम में मुझसे महान शायद कोई न होगा। एक दिन वह वीणा बजाते प्रभु के पास पहुँचे। प्रभु पेट की पीड़ा से तड़प रहे थे। नारद जी ने पूछा—प्रभु ऐसा कौन सा उपाय है जिससे आपके

पेट की पीड़ा मिट सकेगी। प्रभु ने कहा यदि मुझे किसी के पैर का चरणामृत मिल जाय तो मैं ठीक हो जाऊँगा। नारद जी ने सबसे पूछा किसी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। अन्त में नारद जी गोपियों के पास गए। गोपियाँ श्री राधा जी के साथ वन में बैठी प्रभु के विरह में डूबी उन्हीं की चर्चा कर रही थीं। गोपियों ने ज्यों ही नारद जी को देखा उनका स्वागत किया और शुभागमन का कारण पूछा। नारद जी ने ज्यों का त्यों सब वृत्तांत सुनाया। गोपियाँ यह कहते हुये कि प्यारे कृष्ण के आराम में हम लोगों को आराम, उन्हीं के सुख में सुख है यदि नर्क भी हमें मिले तो कोई दुःख नहीं एक हन्डा लाइये हम चरणामृत दे देंगे। और सब ने अपने-अपने पैर धोकर उन्हें चरणामृत दे दिया। नारद जी चरणामृत लेकर प्रभु के समीप पहुँचे प्रभू की यह तो लीला मात्र थी। प्रभू मुस्कराते हुए शीघ्र ही उठे और तत्काल चरणामृत छिड़क कर अच्छे हुए। नारद जी ने कहा प्रभू इन ग्वाल गोपियों के चरणामृत की इतनी महिमा ! उसके सामने जप-तप कुछ नहीं। प्रभू ने कहा—उन्होंने मेरे आज्ञा का पालन किया यही उनका सबसे बड़ा साधन है।

जिसमें वह राजी उसी में सारा सुख निहित था। उनकी खुशी के लिए ही सब कुछ किया जाता है। बहुत सा हार फूल मुझको लाकर चढ़ाती हो पर मेरे आदेश पर न चलो क्या मुझे प्यारी हो सकती हो। नहीं ! साधारण तौर पर आप नित्य जीवन में ही देखिये—नौकर पुत्र-स्त्री अन्य व्यवहारिक जन जो अपनी आज्ञा, इच्छा पर चलते हैं वही सबसे प्यारे लगते हैं।

और तो और यह शरीर के अवयव यदि अपने अनुकूल न चलें तो उस पर गुस्सा आता है फिर प्रत्यक्ष साकार वस्तु की तो कोई बात ही नहीं। हमारे कर्म का फल तो हमें स्वतः ही

खिलता है। योग वशिष्ठ में कहा है "कर्म ही दैव है। दैव ही कर्म है।" पूर्व संस्कारी पुण्यात्मा जिन्होंने अपने को गुरु आज्ञा का ही साधक बना रक्खा वही पूर्णता को प्राप्त करता है।

जैसे किसी का पुकारने का नाम तथा कुण्डली का नाम जानना आवश्यक है। अगर कुण्डली का नाम जानते हैं तो गृह नक्षत्रों को दिखा कर भविष्य के बारे में बहुत कुछ जान समझ सकते हैं।

आज्ञा पालन में आप यह न समझियेगा कि सर्व भोगी तो नहीं बनना है बल्कि सर्व त्यागी बनना पड़ेगा। यह सब कुछ नहीं है वह जो है सो है ही। दो बांस को रगड़ो तो अग्नि पैदा होती है।

सूर्य को ही देखकर कमलिनी खिलती है। इसी प्रकार गुरु के महावाक्यों द्वारा ही शास्त्रों का रहस्य खिलता है। आप तो कह सकते हैं, शास्त्र तो पहले से ही खिले हैं किन्तु ऐसा नहीं है। वह खिले हुए हैं किन्तु खिले हुए भी बन्द हैं। वह सतगुरु के महावाक्य द्वारा ही प्रकाशित होते हैं अज्ञान के ज्ञान का भेद तभी खुलता है। श्री गुरुदेव भगवान की जै।

प्रश्न—प्रभु का नाम जो जंपा जाता है यही है कि कुछ और भी हैं?

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

———

श्री गुरुवेनमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

हमारे संत श्री विनोबा जी के द्वारा गीता प्रवचन नामक एक पुस्तक लिखी गई है। कल हम उसको सुन रहे थे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों मेरे गुरुदेव ही बोल रहे हों। इतना निर्मल पवित्र बचन था।

दो व्यक्ति गंगा स्नान करने के लिये गये थे उनमें एक भावुक एवं भक्त था दूसरा वैज्ञानिक था। एक ने कहा, गंगा जी विष्णु जी के चरण से निकली हुई हैं। दूसरे ने कहा यह गङ्गा जल शुद्ध शरीर के लिए स्वास्थ्यप्रद है। जो भावुक भक्त था उसकी काया भी पवित्र थी और मन भी। ऐसी भावना उसकी गङ्गा जी के प्रति थी भी कि गंगा स्नान से ही काया और मन पवित्र होता है। निष्ठा एवं विश्वास पर ही संसार की प्रत्येक वस्तु का फल निर्भर है।

संसार में अनेक नारियां होती हैं। जो पति की आज्ञा की पालन कर्त्ता होती हैं किन्तु अनूकूल कर लेती हैं प्रतिकूल नहीं। इसी प्रकार शिष्य भी होते हैं। सात दिन अगर हलुआ-पूड़ी खाने को कह दो तो आज्ञाकारी बन कर स्वीकार कर लेंगी किन्तु सात दिन न खाने का ब्रत लगा दो तो झट कुछ न कुछ असमंजस दिखा देंगी। यही है संसार की निष्ठा।

प्राणी अपना हित अहित सब कुछ जानते हैं किन्तु पता नहीं किस प्रबल प्रेरणा के हेतु वह न करने वाले कार्य को भी कर लेते हैं। अर्जुन ने इसी प्रश्न को भगवान श्री कृष्ण से पूछा था। प्रभू ने यही कहा, जन्म-जन्म के अभ्यास एवं संस्कार के कारण वह ऐसा कर लेते हैं। इसी प्रकार जन्म-जन्म का अभ्यास पुण्य कर्म को भी करा लेता है इसलिए भगवान ने गीता में कहा है "कि सतत निष्काम रूप से अच्छे शुभ कर्म करने का अभ्यास डालना चाहिए।"

आप हमारे भाई, बहन कितने परिश्रम तथा कठिनता से वहां से आते होंगे। संसार का भाव जानना कितना कठिन है। आप लोग आते हैं इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप लोग सच्चे रूप से परिश्रम करके इस वस्तु को प्राप्त कर लें। मां जिस प्रकार अपने को मिटा कर भी अपने बच्चे को महान् और सुखी बना कर छोड़ती है इसी प्रकार से हम लोग बोलते हैं कि हमारी निज आत्मा मेरा स्वरूप जो मेरे शरणापन्न हो गया है किसी न किसी प्रकार वह अपने आत्म धन को समझ जाय। यह शरीर रूपी जो छिलका अथवा वस्त्र लगा हुआ है इसी को उसने अपना सब कुछ समझ रखा है इसी से यह संसारी नाता गोता लगा रहता है।

वह कृष्ण जिसकी आप आराधना करते हैं आप में स्वयं है समस्त शक्ति एवं बुद्धि वह आपमें है किन्तु उसको प्राप्त करने के लिए कुछ पुरुषार्थ आपको करना पड़ेगा क्या ईश्वर को मीरा पा सकती थी ? आप नहीं पा सकतीं ? क्यों नहीं ? आपको कुछ करना पड़ेगा। बिना कुछ करे कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

आपको श्रद्धा और लगन है। इसको उत्तरोत्तर बढ़ाओ घटाओ नहीं। श्रद्धा प्रेम ही बढ़ाने में सहायक है।

कर्म आप करिये किन्तु फल नहीं चाहिये यह शास्त्रों का जोरदार वचन है। आप लोगों को उच्च फल की प्राप्ति नहीं होती त्याग करके देखिये तो उसका आनन्द आप लोगों को हो। यदि आपने पाप किया है और उसका फल न भोगने के लिए आप सात लोक के भीतर छिप जायँ किन्तु वह पाप का फल आपको वहां भी छोड़ेगा नहीं वहां जाकर आपसे मुलाकात अवश्य कर लेगा। इसी प्रकार पुण्य करिये और कृष्णार्पण कर दीजिए किन्तु आपका पुण्य भी वहां आपको पाकर उसका दस गुना फल देगा। आप पुण्य कर्म करते जाइये, फल की इच्छा न करिये वह स्वतः ही शुभ फल देता जायेगा।

परम तपस्या के फलस्वरूप ही हमारी इच्छा मरणासन्न हो जाती है। देखिये भीष्म पितामह जैसे आप भी बन सकते हैं। आपके नाती-पनाती आपके सामने ही मर जाते हैं, आप रोती ही रह जाती हैं। लोमश ऋषि के सदृश आप भी बन सकते हैं यदि वैसा कर्म हो तो असम्भव नहीं है।

चाह रख कर भक्ति करने से बड़ा ही दुःख होता है कि कहीं इच्छा न पूर्ण हो तो एक बार शंकर और पार्वती जी भ्रमण करने निकले एक ग्वाला था उसके यहां गये और जाकर कहा भूख लगी है। उसने एक गिलास मट्ठा पिला दिया। शंकर जी ने कहा, बाल-बच्चे बढ़ें, फलो फूलो यह आशीर्वाद देकर आगे बढ़ गये। वहां एक सन्त थे उनके पास एक गऊ थी उससे शंकर जी ने कहा, भूख लगी है उन्होंने दो गिलास गर्म दूध लाकर दिया। दूध पीकर शंकर जी ने कहा, तेरी गाय मर जाय। पार्वती जी ने कहा आपने ऐसा क्यों किया—उसने मट्ठा पिलाया तो आशीर्वाद दिया और इसने कितने प्रेम श्रद्धा से दूध पिलाया तो आपने उसकी गाय मर जाने का श्राप दिया। शंकर जी ने कहा, तुम

नहीं समझती, जिसको मैं प्यार करता हूँ उसका सर्वस्व ले लेता हूँ मैं जो करता हूँ उचित ही सोचकर करता हूँ। ग्वाला गृहस्थ था उसकी धन की वृद्धि होगी तभी ईश्वर की सेवा कर सकेगा और मेरे चरणों में श्रद्धा बढ़ेगी। साधू को श्राप इसलिए दिया कि गाय मर जाने से जो थोड़ा बहुत झंझट उसके पास था वह भी समाप्त हो जायेगा और वह स्वच्छन्दता से और समय भगवत भजन में दे सकेगा। कहते हैं—

अपना सोचा दूर है, प्रभू सोचा तत्काल।

ईश्वर जो सोचता है वही भविष्य में करता है।

थोड़ा बरदास्त करने की शक्ति होनी चाहिए वह कभी निन्दा कराता है, कभी गाली दिलाता है। ऐसा करा देने से हम जोश से आगे बढ़ सकते हैं ईश्वर जो करता है वह सत्य और ठीक ही करता है।

बुद्धि और विचार की बात है जैसे संस्कार होते हैं वैसे ही बुद्धि भी बन जाती है। प्रभू के चरण कमल में आ करके भी संस्कार चलता रहता है जिसके शुभ अच्छे संस्कार बने रहते हैं उसकी भक्ति शीघ्र फलती है और कर्म पुरुषार्थ में ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

संतों का सङ्ग जरा ख्याल करके करना चाहिए। वही ईश्वर के रहस्य को बताते हैं संत अगर तुम्हारे ऊपर बलिहार हो जाँय तो तुम्हें बनाकर ही छोड़ेंगे। यदि नहीं तो बात दूसरी है।

मछली को यदि तुम दूध में डाल दो तो वह मर जायेगी। अन्यों के लिए दूध पौष्टिक पदार्थ पर मछली के लिए विष के समान है। इसी प्रकार सन्त का सङ्ग है। जानों, समझो तो सब कुछ प्राप्त कर सकते हो न जानों तो कुछ नहीं। मनुष्य की बोली चार प्रकार की होती है—

जींव बोली, माया बोली, ब्रह्म बोली, गुरु वोली, परा, पश्य-
न्ति, मध्यमा, वैरवरी ।

हमारी हवेली में यदि कोई चीज हो और उसका नाम न आता हो तो वह हमारे किस काम की और यदि नाम से जानते हों और रूप न जानते हों तो किस काम की। इसीलिये किसी भी वस्तु की नाम और उपयोगिता दोनों आवश्यक है—हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। आपने सुना राम आपने सोचा किसी समय इस नाम के भगवान उत्पन्न हुये थे उनको भजना हमारा कर्तव्य है। किन्तु वर्तमान नाम रूप का हमें कोई पता नहीं। इसीलिए भावना द्वारा पुराने नाम रूप का हम स्मरण करते हैं वर्तमान रूप के नाम से अनभिज्ञ हैं सप्त पंचार्थ पुस्तक में इसका अच्छा वर्णन है। चैतन्य नाम रूप को समझना चाहिये तभी जीवन में सफलीभूत हो सकते हैं एवं उस नाम से पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। आपने उस नाम को सुना समझा ही नहीं।

ईश्वर के अनेक नाम जपने से हृदय शुद्ध पवित्र होता है किन्तु नाम जो चैतन्य है वह सब कुछ बना देता है—

कहौं कहाँ लग नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

इसका साधारण अर्थ यह है कि भगवान राम अपने स्वयं नाम की स्वतः महिमा नहीं गा सकते फिर हम लोगों की कौन सी बात है किन्तु ऐसा आशय नहीं है इसमें कुछ गूढ़त्व छिपा है। कोई एक व्यक्ति महा पापी था उसने एक भक्त से कहा, तुम कहते थे पाप चिल्लाता है इसी प्रकार की बात है कि आपकी आत्मा आप ही सत्य बात के लिए चिल्लाएगी।

किसी की बात के लिये आप अटल निष्ठा, विश्वास रखिये आप स्वयं सफलीभूत होंगे। आप स्वयं वही कर सकते हैं जिनके कारण आप किसी को महान कहते हैं। जब आप किसी अपने साथी की नकल उतारकर एक्टिंग (acting) करने लगते हैं और लोग जो निपुण हैं कौरिकेचर करते हैं तो किसी महान की नकल ही उतारिये वही आप भी बन सकते हैं।

सत्य निष्ठा सत्य भावना पर ही अनहोनी होनी हो जाता है पानी में आग नहीं लग सकती, आकाश में फूल नहीं खिल सकता किन्तु दृढ़ विश्वास और निष्ठा से सम्भव हो सकता है। आप अपनी निष्ठा तथा विश्वास पर दृढ़ रहिए न। तुम्हारे साथ कोई कितना ही अत्याचार करे, तुम्हें नाम न जपने दे किन्तु तुम्हारे हृदय की भावना भला कौन ले सकता है ?

अध्यात्म तत्व ज्ञान मकरध्वज की तरह है जैसे मकरध्वज से ठण्ड नहीं लगती उसी प्रकार इस तत्व ज्ञान से सुख-दुःख का मान नहीं होता। यह उस बरसाती की तरह है जो सर्दी गर्मी बरसात रूपी कठिनाइयों से दूर रखती है। भक्ति के बदले यदि धन प्राप्त हो तो कोई लाभ नहीं। भक्ति की प्राप्ति का यही फल है कि हम दुःख-सुख रूपी प्रपञ्चों से रहित हो जाँय। जहाँ विष्णु हैं वहां लक्ष्मी जायेंगी ही। जहां कृष्ण हैं वहां राधा जायेंगी ही।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम् देव देवः ॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

———

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासु देवम् !
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासु देवम् !!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्व मम देव देवः ॥

रूप रहित नाम—रूप रहित नाम का अनुभव होता है। रूप सहित नाम जो होता है वह लेखों के द्वारा दृष्टिगोचर होता है। अज्ञान के कारण भले ही हम कहें कि रूप रहित नाम नहीं होता है। वह ऐसा रूप नहीं रखता कि केवल नीचे से झलकता हो। जैसे गर्मी है तो उसे हम स्पर्श करके या अनुभव के द्वारा जानते हैं किन्तु देख नहीं सकते। मौसम से उसको जानते हैं। ईश्वर समयानुसार रूप धारण करता है ऐसा नहीं है वह तो सदैव रहता है किन्तु दिखाई नहीं पड़ता माया के कारण। भावना की प्रबलता से दृष्टिगोचर होता है अपने आस-पास ही रहता है, आस ही पास है और पास ही आस है किन्तु किसी को आस अच्छा लगता है किसी को पास अच्छा लगता है। राम वही हैं, कृष्ण वही हैं; भावना के अनुसार दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार इस युग में भगवान हमारे पास यहीं हैं, भाव के अनुसार मानते हैं। ध्रुव को ही देखिये जिस प्रकार की मूर्ति

उपासना करने को उनकी माँ ने बताया था उसी प्रकार की मूर्ति जब तक उनके सामने नहीं आई उन्होंने हृदय से उस ध्यान को न हटाया। और ईश्वर पर विश्वास नहीं किया जब प्रह्लाद को तपस्या करते बहुत समय हो गया तब प्रभु स्वयं एक दिन परीक्षा लेने के लिए ब्राह्मण का रूप रखकर आये एवम् उनके हृदय की मूर्ति को खींचकर ध्रुव की ध्यान तन्द्रा खोली किन्तु ध्रुव ने उस रूप को नहीं माना।

इसी प्रकार तुलसीदास जी ने भी कहा—

कर मुरली नख चन्द्रिका, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बाण ले हाथ॥

इससे क्या आशय? राम उन्हें कृष्ण रूप में झलके लेकिन अपनी भावना की पूर्ति उन्होंने राम रूप में ही किया यहाँ पर यही युक्ति यथार्थ सिद्ध होगी—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

भावना प्रधान है। अनेक युक्तियों से सिद्ध है कि ईश्वर सदैव साकार रूप में इस प्रकार से हैं किन्तु भावना एवं विश्वास लगन से जो जितनी निकटता या दूरस्थता रखता है उसके लिए वह वैसे ही प्रकट होते हैं।

एक कथानक है कि राधा जी विवाहित थीं उनके पति भी थे। जब उन्होंने सुना कि राधा जी कृष्ण जी से प्यार करती हैं तब इस बात को प्रमाणित करने के लिये स्वयं लुक छिपकर उन दोनों की लीला देखी। एक दिन उसे बड़ा क्रोध आया। श्रीकृष्ण जी भी वहीं वन में खड़े बन्शी बजा रहे थे उस पुरुष ने उनकी मुरली को छीनकर फेंक दी और तोड़ भी दी। वह खंडित बन्शी

कई रूपों में परिवर्तित हो गई। यह देखकर उस व्यक्ति को और क्रोध आया एवं उसने सोचा कि यदि इस अनेक बन्शी को राधा देखेगी तो और भी मोहेगी। सोचकर उसने बन्शी में आग लगाना चाहा किन्तु निष्फल रहा। राधा जी ने जब अनेकों बन्शी की आवाज सुनी तथा राधा जी को भ्रम उत्पन्न हुआ कि आज प्रभु कितनी बन्शी बजा रहे हैं।

राधा जी ने उस पुरुष से कहा, तुम भगवान श्री कृष्ण से बैर रखते हो वह पारब्रह्म परमेश्वर हैं तो मेरी दुर्गा जी की मूर्ति में प्रतिबिम्बित हों। राधा जी उसे मन्दिर में ले गईं। प्रार्थना कर लेने के पश्चात् दुर्गा जी की मूर्ति में श्रीकृष्ण का रूप दिखाई दिया। पर वह मूढ़ नहीं माना कहने लगा, वह भगवान अगर हैं तो आधा कृष्ण, आधा दुर्गा इसी मूर्ति में प्रतिबिम्बत हों तत्काल वैसा ही हुआ। मूढ़ तो मूढ़ ही था अब अगर कृष्ण जी में दुर्गा दिखाई पड़े तब हम भगवान समझें ऐसा भी हुआ। कहने का आशय यह है कि भावना के अनुसार ही हमें वही एक वस्तु अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है। हम लोगों में अविद्या विराजमान है। इसीलिए हम विश्व से पराजित हैं, और छोटे बने हैं। आत्मा वही एक है सब में समान शक्ति है, वह नित्य है। इसीलिए कहा है—

"नैनं छिन्दंति न शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" हम अपने आप ही अपने को गरीब, छोट-नीच असमर्थ पापी बनाये बैठे हैं। पाप एवम् अज्ञान के कारण हम अनेक दुःख को भोगते हैं। यदि ज्ञान हो जाय कि हम क्या हैं तो दुःख से मुक्त हो सकते हैं जैसे कोई किसान कहे हम डाक्टरी करेंगे या बनिया कहे हम इंजीनियरिंग कर सकते हैं तो मूर्खता है। पहले उस वस्तु को जानो-समझो। किसी कार्य को करने से पहले उसको जानना, समझना अनिवार्य

है। अज्ञानता के कारण हीरे जैसा जन्म यों ही बीत जाता है। यदि हम इसकी वास्तविक शक्ति को जान लें, समझ लें, तब उपयोग में लाएँ तो परमानन्द होगा। जैसे मोटर साइकिल है उसको चलाना हो तो पहले समझ ले नहीं तो अगर बिना जाने समझे चलायेंगे तो पहले तो चलेगी ही नहीं अगर अंट-संट कोशिश से चल भी जायेगी तो रोक न सकेंगे और खतरा खड़ा हो जायगा। जैसे फुटबाल है वह सबके पैरों की ठोकर खाकर ही चलता है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव का जीवन है। उनको अपने जीवन को चलाने का तरीका सीखना चाहिए जिससे ठोकर न खाना पड़े। आप शास्त्र उठाकर देखिये कि बिना जीवन की असलियत को समझे हुए चलना केवल दुःख है।

आत्मा तत्व प्राप्त कर लेने पर एक ऐसी महान शक्ति उत्पन्न होती है जिससे लोग उसकी इच्छा से एक केन्द्र पर केन्द्रित हो कर उसकी इच्छा पर चलने लगते हैं। चैतन्य महाप्रभु एक बार कीर्तन कर रहे थे इतने में एक छोटी सी लड़की दौड़ती हुई आई और बहुत दिनों से परिचित के सदृश प्रणाम करके बैठ गई एवं ध्यानस्थ हो गई। चैतन्य महाप्रभु ने ध्यान से समझ लिया और आँख खोली तब समस्त जनता को उस लड़की की बात को बताया एवं कहा यदि आपकी ही यह आत्मा है तो वह कृष्ण प्रेम में विभोर होकर कीर्तन करने लगी उन्होंने कहा अच्छा उन्हें करना ही क्या था वह उनकी ही आत्मा थी। उन्हें स्वयं तो सब कुछ करना था लड़की कोई अन्य तो थी नहीं उन्होंने नेत्र बन्द किया बस लड़की जोर-जोर से कृष्ण-कृष्ण कहकर रोने लगी और नृत्य करने लगी। यह क्या था ? उन्होंने सब कुछ स्वयं ही किया।

जैसे चन्दन और पानी सिल पर घिसते-घिसते एक सुवासित द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है इसी प्रकार भक्ति भगवान भक्त

एक ही हैं अन्य दूसरा नहीं। अज्ञान अविद्या के कारण हम अपने को चाहे जो भी समझें यों तो हम और दूसरे ही हैं। गुरुदेव भगवान कहते थे यह संसार भक्तों के लिए बना है, वही उसके राजा हैं, उन्हीं का कानून चलता है किन्तु अज्ञानियों ने अपना अधिकार जमा रक्खा है। जब कोई भक्त अवतरित हो जाता है तो वह सबके सिर पर राज्य करके श्रेष्ठ बने रहते हैं और सब कुछ करके जल में कमलवत् रहते हैं। उन्हें यथार्थ सत्य वस्तु का ज्ञान है। दृढ़ निष्ठा है। भले ही सुमेरु को कोई हिला सके पर इन्हें कोई इनकी निष्ठा से नहीं डिगा सकता। हम लोगों में तो कोई निष्ठा नहीं है सात दिन का व्रत निराहार लेते हैं किन्तु बीच में सहन न होने के कारण बीच में ही निष्ठा से विमुख होकर व्रत खंडित कर देते हैं।

सत्यता में जो शक्ति है वह और किसी वस्तु में नहीं है। हमारे अज्ञान के कारण हमारा जीवन तूफानमेल की तरह बीता जा रहा है कुछ भी न कर सके, सफेद वस्त्र में लपटे हुए गङ्गा जी में चले जाते हैं। पृथ्वी पर भार बन जाते हैं। मरने पर भी कहीं अटक गये थे तो गन्ध की वजह से लोग नाक दबाते हैं। ज्ञान वैराग्य विवेक से यदि काम लें तो गृहस्थ को भी स्वर्ग बना दें नहीं तो यही कलह में जीवन बीत जाता है। गृहस्थाश्रम बहुत अच्छा, सुखद और सुन्दर है। यदि ज्ञान बुद्धि से काम लें तो वही स्वर्ग बन जाता है।

हम हवा में आये, हवा में चले गये जीवन का कुछ पता न पा सके। काल आयेगा और चला जायेगा कुछ भी न कर सकेंगे। ऐसे कीमती वस्तु को यूँही कूड़े में गँवा दिया। कथनी को करनी में लाना कितना दुसाध्य है। यदि कथनी को करनी में उतारे तो फिर क्या ?

विषय से विमुख लाखों में कोई एक होता है। पार्वती जी के सम्वाद में—हमारे अज्ञान एवं कर्महीनता के कारण प्रत्यक्ष, साक्षात् महापुरुष हमें दृष्टिगोचर नहीं होते। यदि कोई सम्यक ज्ञान दे यानी परोक्ष ज्ञान दे तब हमें यह दृष्टिगोचर हो अन्यथा नहीं। सगुण भक्ति के पथ से ही निर्गुण भक्ति में सरलता से जा सकते हैं। सत्य ज्ञान द्वारा ही हम उसे जान सकते हैं और जैसे हमसे और हमारे हाथ में कोई भिन्नता नहीं, आँख और काजल में कोई भिन्नता नहीं। इसी प्रकार ईश्वर और हममें हो जायेगी।

इसी जीवन में यदि हम उस सच्चे मार्ग को जानें और जीवन में उसका अनुमोदन करें तो शीघ्र ही उस प्रभू को देख सकते हैं। प्राचीन शास्त्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी युग में कृष्ण हुए होंगे, मीरा उनसे मिली थीं, विष पान भी किया था लेकिन शास्त्र असत्य नहीं हो सकते। करने से ही सारी बातें वर्तमान में भी हो सकती हैं।

जैसे एक पौधे को उखाड़ कर भिन्न-भिन्न स्थान पर बोते रहें तो एक दिन वह सूख कर नष्ट हो जायेगा चाहे वह कितना ही कीमती क्यों न हो। इसी प्रकार मन बुद्धि से युक्त इस मन को जगह-जगह भटकाते रहें और एक ओर दृढ़ होकर न लगायें न कुछ ग्रहण करें तो कहाँ से ईश्वर रूपी, फल या ज्ञान रूपी फल प्राप्त हो सकेगा। किसी निश्चित तत्व की उपलब्धि नहीं हो सकेगी बिना एकाग्र हुए। एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचना आसान न होगा।

आप ही लोग कभी आये और कभी न आये, कोई सुने, न भी सुने तो क्या लाभ हो सकता है। यदि सद्मस्तिष्क हो, सद्ग्रन्थ हो तो शीघ्र ही उससे कुछ ग्रहण किया जा सकता है।

किसी भी शास्त्र को खोलने के लिए सद्गुरु रूपी कुन्जी चाहिए। जब तक कुन्जी नहीं लगाई जायगी, उसका भेद नहीं मिल सकता।

किसी भी पौधे को आप बोइये उसके बढ़ने में कुछ समय लगेगा चाहे लाख एयरकन्डीशन में रक्खे विलायती खाद डालें और कृषि विशेषज्ञ को बुलायें किन्तु फिर भी समय तो कुछ लगेगा ही। लड़की की शादी पक्की करने के लिए कुछ समय लगता है। इसी प्रकार चाहे कितना भी सद्ग्रन्थ पढ़ें। विवेक, वैराग्य, अभ्यास हो थोड़ा समय निरन्तर इस वस्तु को बढ़ाने में लगेगा।

एक बार यदि सद्गुरु रूपी पक्का रंग चढ़ जाय फिर किसी भी प्रकार वह उतर न सकेगा। जैसे—

"काली कमली पर चढ़ै न दूजो रंग", काले रंग पर कोई दूसरा रंग चढ़ाया नहीं जा सकता।

ज्ञानी को मैं गुरु लगत हूँ,
अज्ञानी को दास।
जहँ देखूं मैं वाद विवादा,
तहाँ से उठाऊँ गाँस।

अज्ञानी को ज्ञानी बनाना सरल है किन्तु अज्ञानी ज्ञानी को सद्ज्ञान देना दुर्लभ है। सतज्ञान की जिज्ञासा होनी चाहिये जिसकी सहायता से आप उत्तरोतर प्रयत्न के द्वारा आत्म स्वरूप रूपी धन को प्राप्त कर लेंगे।

श्री गुरुदेव भगवान की जै !

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम् देव देवः ॥

श्री गुरुदेव भगवान की जै !
धर्म और सन्तों की जै !

प्रश्न—लोक किसे कहते हैं और परलोक किसे कहते हैं ?